धर्म की आड़ में स्त्री-शोषण का आख्यान

भगवानदास मोरवाल

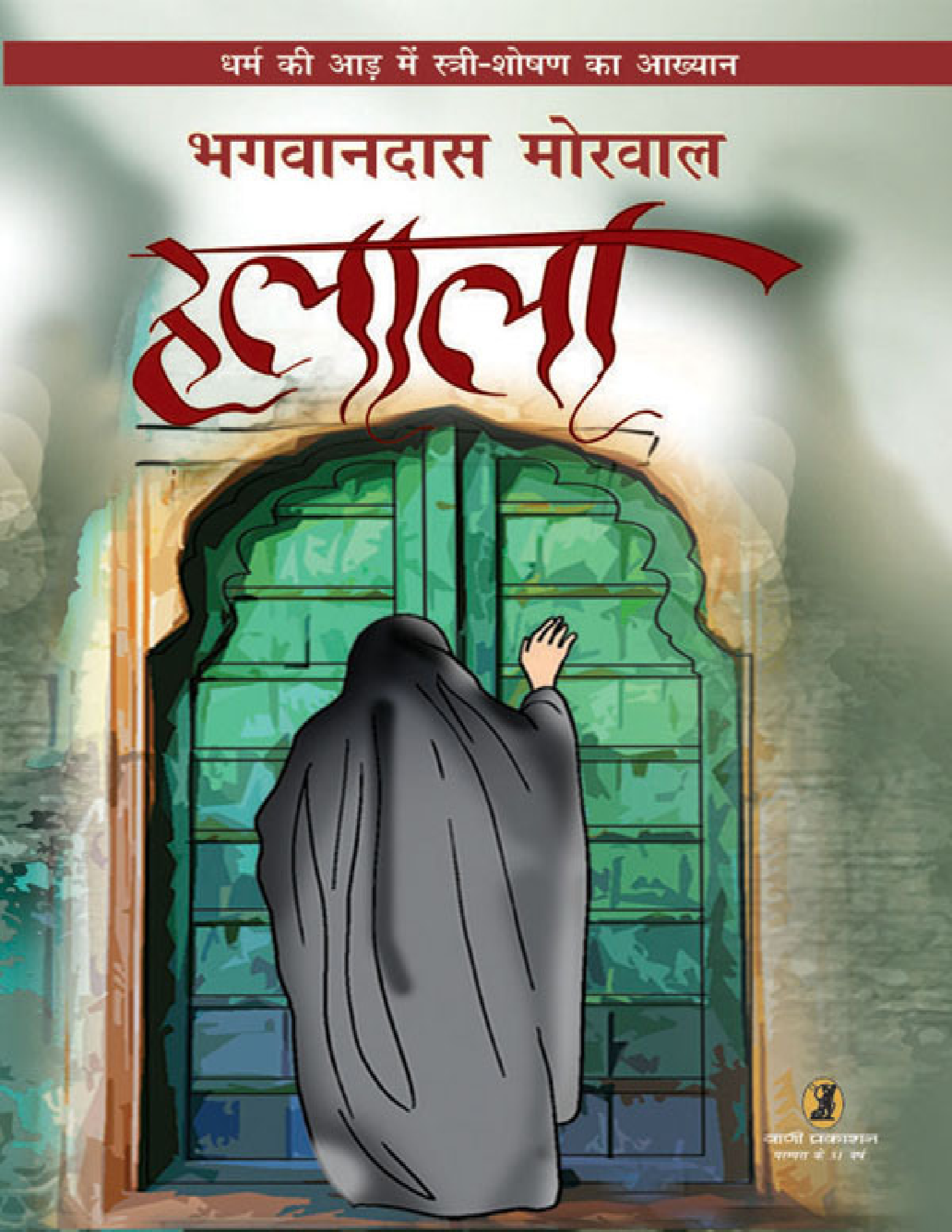

हलाला

वाणी प्रकाशन

हलाला

हलाला

(धर्म की आड़ में स्त्री-शोषण का आख्यान)

भगवानदास मोरवाल

वाणी प्रकाशन

वाणी प्रकाशन

4695, 21-ए, दरियागंज, नयी *दिल्ली* -110 002

शाखा

अशोक राजपथ, पटना-800 004

फ़ोन+91 11 23273167 फ़ैक्स : +91 11 23275710

www.vaniprakashan.in
vaniprakashan@gmail.com
editorial@vaniprakashan.in
sales@vaniprakashan.in

HALALA

by Bhagwandass Morwal
ISBN : 978-93-5229-375-9
Novel © 2016 लेखकाधीन

इस पुस्तक के किसी भी अंश को किसी भी माध्यम में प्रयोग करने के लिए प्रकाशक से लिखित अनुमति लेना अनिवार्य है।

वाणी प्रकाशन का लोगो मक़बूल फ़िदा हुसैन की कूची से

अल्लाह अपने हुक्म से ऐसे लोगों को अँधेरों से निकाल कर उजाले की ओर लाता है, और उन्हें सीधा रास्ता दिखाता है, जो उसकी ख़ुशी पर चल सलामती की राहें दिखाता है।

—क़ुरआन मजीद

अल्लाह अपने हुक्म से ऐसे लोगों को अँधेरों से निकाल कर उजाले की ओर लाता है, और उन्हें सीधा रास्ता दिखाता है, जो उसकी ख़ुशी पर चल सलामती की राहें दिखाता है।

फ़ज्र [1]

क लसंडा!

डमरू के कानों में जब-जब यह शब्द पड़ता, तब-तब उसे लगता मानो पूरी कायनात धधक उठी हो, और पूरी देह में कील की मानिंद काबली कीकर के सख़्त काँटे ठोंक दिये हों। वह उसी समय सबसे नज़रें बचाते हुए सीधे नोहरे में जाता और सालों से सहेज कर रखे गये बहुकोणीय टूटे और धुँधले पड़ चुके आईने में, देर तलक अपने आपको अपलक निहारता रहता। पता नहीं यह इस पुराने पड़ चुके आईने का दोष है, या उसका अपना वहम कि उसे इसमें ऐसा कुछ नज़र नहीं आता, जैसा पूरा मोहल्ला और उसकी सबसे छोटी भावज आमना कहती है। वह पूरी कोशिश करता यह जानने की कि क्या सचमुच उसका रंग-रूप काले साँड़ की तरह है? अपने इसी वहम को वह झुठलाने की बार-बार कोशिश करता, और आख़िरकार उसे अपने इस धुँधले पड़ चुके आईने पर ही यक़ीन करना पड़ता।

अपना ही अक्स डमरू को अपना नज़र नहीं आता बल्कि बिना खल-चूरी की सानी के ऐसा बलद नज़र आता, जिसका काम बारह महीना अपनी देह तुड़वाने के कुछ नहीं होता। डमरू को लगता जैसे भादों की देह चाटती धूप में किसी आवारा मुँडेर पर स्याह काई की परत चढ़ी हुई हो। नियति के इस बेरहम मज़ाक़ पर उपजा ग़ुस्सा धीरे-धीरे अपने आप बेचारगी में बदलता चला जाता, और प्याज की गंठों जैसी जिन बलिष्ठ भुजाओं पर उसे बड़ा नाज़ रहता, देखते ही देखते वे सूखी रेत पर छटपटाती मछलियाँ-सी नज़र आने लगतीं।

'खुदा ऐसा रूप और कद-काठी किसी को न दे!'

अपने परवरदिगार से मन ही मन एक बेज़ा शिकायत कर डमरू अभी आईने के सामने से हटा ही था कि सबसे छोटी भावज आमना ने शायद उसे देख लिया था, जो किसी काम से यहाँ अपनी जिठानी फ़ातिमा के साथ आयी थी।

"जब देखो, ई नौसा चारू पहर या सीसा के आगे धरो पावे है। ई तो खुदा ने थोड़ो-सो मलूक ना बणायो... बणायो होतो तो पतो ना कैसी धरती ए फाड़तो!" सबसे छोटी भावज आमना ने मुँह बिचका कर, अपनी जिठानी से कहते हुए, जैसे जानबूझ कर अपने देवर डमरू को कोंचा।

सुनते ही डमरू के पूरे जिस्म में धारदार बर्छियाँ खुबती चली गयीं। जिन भुजाओं की मछलियाँ थोड़ी देर पहले छटपटाती-सी नज़र आ रही थीं, छोटी भावज के इस आवाहन पर जैसे मचल उठीं। जिस स्याह चेहरे पर भादों की देह चाटती धूप में आवारा मुँडेर पर स्याह काई की परत चढ़ी दिखाई दे रही थी, उसी चेहरे की यह परत भीतर ही भीतर मानो ऐंठने लगी।

बड़ी भावज फ़ातिमा ने अपनी दौरानी को एक बेमानी डाँट मारते हुए टोका, "रंडी, तू भी जब चाहे याहे छेड़ती रहवे है। जभी राजी रहेगी जब काई दिन ई कुछ उल्टी-सूधी बक देएगो!"

"भावज, कदी मेरो भी बखत आएगो!" डमरू ने गहरी साँस लेते हुए कहा।

"हम्बै सहजादा, तेरी ही किस्मत में लिख राखी हैं ये हूर की परी।" सबसे छोटी भावज आमना तमकते हुए बोली।

"कहीं आज तेरा मन में हर का भजन सुण्ना की तो ना है?" बड़ी भावज ने थोड़ा सख़्त होते हुए कहा।

"यामें हर का भजन की कहा बात है। ऐसा कू कौन देएगो अपणी बेटी ए... एक तो इतनी उमर, ऊपर सू इतनो बढ़िया रूप। याको तो ऊ कहणो है के—*चुगे करे हो ज्वार में, बणो फिरे है भंग/हंसा की तू सर करे, उडो जाए न संग।* " इतना कह छोटी भावज ने पिच्च से ज़मीन पर थूक दिया।

"ठीक है भावज, मेरो भी नाम डमरू ना जो एक दिन तेरी माँ ही..." कहते-कहते रुक गया डमरू।

अपने देवर के इस तेवर को देख बिचली भावज फ़ातिमा सहमती चली गयी। पता नहीं डमरू के इस अधूरे वाक्य में कोई अनर्थ छिपा हुआ था, या सचमुच कोई चुनौती छिपी हुई थी। उसने अपनी दौरानी आमना को बाज़ू से पकड़ा और लगभग धकेलते हुए उसे नोहरे से ले आयी।

दोनों भावजों के जाते ही नोहरे में ख़ामोशी बिछ गयी। डमरू देर तलक उसी धुँधले आईने के सामने खड़ा एकटक अपने आपको निहारता रहा, जिसने उससे कभी झूठ नहीं बोला। वह अलग-अलग कोणों से खुद को देखता रहा। काफ़ी देर बाद उसके भीतर उफनती लहरें शान्त हुईं, तो एकाएक उसकी नज़र अपने अक्स पर ठिठक गयी। अपने आपको ग़ौर से देखने के बाद उसे लगा उसकी भावज आमना ने ग़लत नहीं कहा है। इस उम्र में ऐसे को भला कौन अपनी बेटी देगा। डमरू के कोर भीग आये और देखते ही देखते पनीली आँखें भरती चली आयीं। उसे इसका पता भी नहीं चलता अगर कोरों से गुनगुनी पतली धार गालों से सरसराती हुई दिखाई नहीं देती। अपने परवरदिगार से एक बार फिर वह मन ही मन एक बेमानी-सी शिकायत करता कि तभी मस्जिद के लाउडस्पीकर से

आयी जुह्र की अज़ान ने उसके अशान्त, भटके हुए मन पर जैसे दस्तक दी। उसने कुर्ते की आस्तीन से कोरों को पोंछा और तेज़-तेज़ क़दमों से मस्जिद की ओर बढ़ गया।

---

1 . फ़ज्र : प्रातःकाल।

2

पता नहीं कैसे यह बात घर से मुहल्ले में और मुहल्ले से फूट कर लपरलेंडी के कानों तक जा पहुँची। लपरलेंडी के पास पहुँचने का मतलब यह हुआ कि इसके बाद इसके बारे में किसी को कुछ बताने की ज़रूरत नहीं है। आक के पके डोडे से निकले फोहे उड़ कर कहाँ-कहाँ पहुँच जाएँगे, अन्दाज़ा लगाना मुश्किल नहीं है। लपरलेंडी के कान तो ऐसी बातें लपकने के लिए जैसे लपलपाये रहते हैं। इसलिए वह उसी दिन से बेचैन है जिस दिन से यह बात उस तक पहुँची है।

न जाने किस दुनिया में खोया डमरू तेज़ी से उड़ा जा रहा था कि लपरलेंडी के चौतरे के आगे पहुँचते ही उसके पाँव ठिठक गये।

"मियाँ डमरू, इतनी तेजी से कहाँ भागे जा रहे हो?"

डमरू ने रुक कर देखा, तो पाया अपने चौतरे पर लपरलेंडी जैसे उसी का इन्तज़ार कर रहा था।

"काका बस ऐसेई!"

"बस ऐसेई तो जनाब ऐसे कह रहे हैं, जैसे निकाह पढ़ा के आ रहे हैं!"

इस बार डमरू के कान खड़े हो गये यह सोचकर कि यह लपरलेंडी आज इतनी नफ़ासत, मुलामियत और तमीज़ के साथ, वह भी एकदम लख़नवी अन्दाज़ में, कैसे पेश आ रहा है? सबसे ज्यादा उसे यह देख कर हैरानी हो रही है कि जिस आदमी पर उसे आज तक यह शुबहा-सा रहा है कि जिसे उसका असली नाम-पता है भी या नहीं, वह पूरी इज़्ज़त बख़्शते हुए उसे मियाँ डमरू कह कर सम्बोधित कर रहा है, जबकि यह तो हमेशा सीधी कुल्हाड़ी से लत्ता धोता है।

"नाऽऽऽ ऐसी कोई बात ना है काका।" डमरू ने टालना चाहा।

"बात तो है डमरू... अब तू ना बताए, तो तेरी मरजी।" लपरलेंडी ने कुरेदते हुए पूछा।

"ईमान सू, ऐसी कोई बात ना है।" डमरू एक बेमानी हँसी हँसते हुए आगे बोला, "अगर कोई तेरी नजर में है तो तू ही बता दे!"

"ऐ कोई बात ना है?" लपरलेंडी इस बार डमरू की आँखों में उतर गया।

"ना तो।" डमरू ने दो टूक मना करते हुए जवाब दिया।

"अच्छो, काबा सोईं हाथ उठाके कह के कोई बात ना है!"

डमरू ने तुरन्त काबा यानी पच्छिम की तरफ़ हाथ उठा दिया।

लपरलेंडी चुप। पल भर के लिए उसे अपने कानों और बताने वाले, दोनों पर शक-सा हुआ। मगर ऐसा कैसे हो सकता है? यही सोचते हुए वह बोला, "पर यार, मैंने तो सुणी

ही के तम दोनूँ देवर-भावज में कोई तगड़ी टिसल-फिस्स हुई ही?"

"अच्छोऽऽऽ तो नोहरावाली बात तेरे पै (पास) भी पहोंचगी है। वैसे ऊ ऐसी कोई बात ना ही... ऐसी छोटी-मोटी मजाक तो देवर-भावज में चलती रहवे हैं।"

"कहा कही, छोटी-मोटी मजाक! ऊ छोटी-मोटी मजाक ही के जब देखो ई कळसंडा पराई बहू-बेटीन्ने तकतो रहवे है। सुकर है खुदा ने ई थोड़ो-सो मलूक ना बणायो, नहीं तो गाँओ-मुहल्ला की एक भी कुआँरी-ब्याहता ए ना छोड़तो।"

"पर काका, मेरी भावज ने ई बात तो कही ना ही।" डमरू के चेहरे का जैसे रंग उड़ गया।

"तो फिर जो कही ही, वही बता दे!" लपरलेंडी ने डमरू को घेरते हुए पूछा।

इससे पहले कि डमरू लपरलेंडी के कहे में कुछ संशोधन करता, सामने से चौतरे की सीढ़ियाँ पार करते हुए किसी ने पूछा, "अरे, या राना बिणजार ए कहा बिद्या पढ़ा रो है?"

"अरे यार फकीरा, तू भी सही मौका पे आयो है... अच्छो सुन, तैने भी सुणी है के इन देवर-भावज में कोई टिसल-फिस्स हुई है?" पुष्टि के लिए लपरलेंडी फकीरा की ओर पलटा।

"हाँ यार, मैंने भी सुनी है के याकी भावजन्ने ने यासू खूब भली-बुरी कही है।"

"ले सुन ले, ई फकीरा तो ना सिखायो है मैंने। अरे बावला, तेरी भावजन्ने तो ऐसी-ऐसी बात कही बताई के अगर हम तेरे आगे बता देएँ, तो तोकू मरण कू भी जिगह ना मिलेगी... पर हमन्ने कहा तिहारी घर की बात है।" इतना कह लपरलेंडी हल्के-से फकीरा की ओर पलटा। फिर उसकी तरफ आँख मारते हुए गहरा साँस लिया, "पर यामें तेरो कसूर ना है डमरू... ऊपरवालो ना तेरे साथ ऐसो अन्याव करतो, ना तोहे ये दिन देखना पड़ता!"

"बात तो तेरी सोलह आने ठीक है यार लपरलेंडी, वरना कहा कमी है या पट्ठा में। अरे, थोड़ो-सो रंग-रूप ही तो ना है।"

"फकीरा, बीरबाणी रंग-रूप सू ना, हथियार सू दबे है। वैसे असल बात ई है के याकी भावजन्ने मुफत में एक मजूर मिलरो है। अरे, बाकी का भाई तो अपनी-अपनी लुगाइन्ने बगल में लेके सोवें और खटतो डोले ई बिचारो डमरू... बताओ, ई कहीं को न्याव हुओ!"

लपरलेंडी की बात पूरी-पूरी होते डमरू की नसों में ठिठका हुआ ख़ून हरहरा कर ठहाठा मारने लगा। भुजाओं में शान्त पड़ी मछलियों के गलफड़ों में मानो ढेर सारी आक्सीजन भर गयी।

"एक बात और कहूँ फकीरा, ई तो डमरू ही भलो आदमी है नहीं तो कोई और सो होतो न, तो अब तलक काई भावज ए इकल्ली पाके टाँग देतो। मजाल है पीछे इनमें सू कोई कुछ कह तो जाती।" लपरलेंडी ने एकदम नाजुक जगह पर चोट करते हुए कहा।

"वैसे डमरू, ये बात कही कौण-सी भावज ने ही?" फकीरा चेहरे के भावों को छिपाने के लिए अक्कल दाढ़ में फँसे किणके को कुरेदने लगा।

"किसने कही है, वही है हमारा घर में एक छाकटी मेरी सबसू छोटी भावज।" नज़र नीची कर डमरू ने धीरे-से कहा।

"यार, वाने जरूर कही होएगी। वैसे भी ऊ सिंगार की है और सिंगार का बारा में तो ई कहवात मसहूर है के अगर अपणा घर में झगड़ा करवाणो है तो सिंगार में जा बसो, और काई सू लट्ठ बजाणो है तो अपणा घर में सिंगार की बिहा लाओ... वैसे एक बात कहूँ डमरू, मौका देखके काई दिन तू या दारी की सिंगारवाली को ही मीटर खेंच दे। याको जोबन कुछ जादा ही फटो मरे है!" दाँत पीसते हुए, मचमचाते हुए सुझाव दिया लपरलेंडी ने।

"काका, मैं तो या काम ए भी कर दूँ, पर मरणो या बात को है के भावज है, ऊ भी सगी।"

"बेकूप, याही मारे तो कहरो हूँ के भावज लगे है। मेरे यार, वैसे भी भावज पे देवर को पूरो हक होवे है। अन्यायी, पाँच-पाँच पंडून् ने भी तो अपणी एक ही भावज द्रौपदा सू काम चलायो हो।" लपरलेंडी ने उचकते हुए डमरू का हौसला बढ़ाते हुए कहा।

डमरू लपरलेंडी के इस सुझाव पर कुछ नहीं बोला।

"लपरलेंडी, मेरी तो सबसू बड़ी चिन्ता ही दूसरी है के—

नट घोड़ा और नाजनीन, बधिया मल्ल सुनार ।
ये छेऊ ठाडे भले, बूढ़े हुए तो ख्वार ।।"

"ई बात तो तैने फकीरा सही कही है। थोड़ा-सा दिन की बात और है। पीछे तो ई हज्ज के लायक भी ना रहेगो। अरे, हारी-बीमारी में याहे कोई एक गिलास पाणी भी ना देएगो।" डमरू की ठंडी शिराओं को ताप देने के लिए लपरलेंडी अपनी तरफ़ से मुट्ठीभर समिधा डाल, उसे भड़काते हुए बोला।

"मेरे यार, जादा नरमी भी आदमी का आपा ए खावे है।" फकीरा ने भी धीरे-से उसमें फूँक मारते हुए कहा।

डमरू के भीतर जैसे कुछ खदबदाने लगा। वह धीरे-से उठा और नोहरा जाने के बजाय तेज़-तेज़ कदमों से अस्र की नमाज़ पढ़ने के लिए जामा मस्जिद की ओर मुड़ गया। मगर आधे रास्ते तक उसकी चाल मन्द पड़ती चली गयी, और मस्जिद की सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते तो उसके अन्दर यह कुफ़्र अँगड़ाई लेने लगा—

जैसे पाखा पे ढलती धूप
जोबन तेरो दो दिन को री गोरी नार
यापे मत कर इतनो गुमान
गहा जाएगो कोई रानो बिणजार।

3

साँझ की उदासी का असली रंग और सुबह का भोला कुनमुनापन देखना हो, तो उसके लिए इस देश के गाँव-देहातों से अच्छी जगह दूसरी नहीं हो सकती। आलम यह होता है कि इशा की नमाज़ होते-होते ज़्यादातर घरों के चूल्हों की राख़ कब ठंडी हो जाती है, पता ही नहीं चलता। साँझ का झुटपुटा घिरते-घिरते और दीया-बाती होते-होते उदास ओसारे हरकत में आ जाते हैं, और इशा की नमाज़ तक लगभग पूरी तरह ख़ामोश हो जाते हैं। जबकि सुबह का कुनमुनापन किसी जिद्दी बच्चे-सा अपने उनींदेपन में देर तलक कसमसाता रहता है।

यह देख कर पूरे घर को हैरानी हुई कि जो डमरू अपनी भावजों द्वारा बाँधे गये दिनों के अनुसार शाम की रोटी नोहरे में ही खाता है, वह बिना किसी पूर्वाभास और किसी को बिना कुछ बताए, मग़रिब की नमाज़ पढ़ते ही सीधा घर आ गया।

डमरू का इस तरह औचक आना भले ही किसी और को खटका हो या नहीं, उसकी सबसे बड़ी भावज नसीबन को ज़रूर खटका। डमरू के पाँवों के चाप, उसे चाप नहीं किसी अनहोनी की जैसे दलक-सी लगी। पता चलते ही नसीबन सीधे दालान में आयी और इससे पहले कि डमरू कुछ कहता, उसने एक तरफ़ खड़ी चारपाई बिछा दी। सबसे छोटी भावज आमना को तो जैसे ही पता चला कि डमरू आया है, उसके तो समझो काटे खून नहीं।

डमरू अभी चारपाई पर बैठा ही था कि मग़रिब की नमाज़ पढ़, दोनों बड़े भाई जमाल खाँ और कमाल खाँ भी आ गये। जबकि तीसरा भाई नवाब खाँ कभी भी आ सकता है। एक पल के लिए तो उन दोनों को भी हैरानी हुई कि आज कैसे बिना बताए डमरू आया हुआ है। मगर उन दोनों ने कुछ नहीं कहा। वैसे भी उसका घर है और अपने घर में जब चाहे वह आ सकता है। यह अलग बात है कि वह अपनी भावजों की इज़्ज़त करते हुए घर-गृहस्थी वाले इस सहन में झाँकता नहीं है।

दोनों भाई वहीं बिछी दूसरी चारपाई पर बैठ गये।

“लाओ भई, रोटी-टूक होगी होएँ तो लियाओ!” जमाल खाँ ने ओसारे की ओर देखते हुए कहा।

आदेश पाते ही एक-एक कर रोटियों की चँगेरी, सब्ज़ी की पतीली, चमली-कटोरी और पानी का जग आ गया, और इससे पहले कि दोनों भाई खाना शुरू करते, तीसरा भाई नवाब भी आ गया।

“अरे, आज ई डमरू कैसे गैल भूलगो!” दालान में घुसते ही नवाब ने मुस्कराते हुए कहा।

“क्यों, ई घर याको ना है! तू भी यार, कदी-कदी कैसी कुलखणी बात करे है।” जमाल खाँ ने अपने भाई नवाब को परोक्ष रूप से डाँटते हुए कहा।

“मेरा कहणा को ऊ मतलब ना है... मे... मेरो मतलब है के आज कैसे चुपचाप...”

“तो कहा याहे काई सू इजाजत लेनी पड़ेगी, या फिर झाँझ बजानी पड़ेगी!”

“तू तो बेमतलब कढ़ी-सो उफनरो है। अन्यायी, मैंने कौन-सी गाली दे दी!” नवाब ने अपने बड़े भाई से कहा।

“छोडो न, पतो ना तम्भी कहा रामाण ए ले बैठा... चुपचाप रोटी तो ना खाई जा रही हैं।” इस बार नसीबन दख़ल देते हुए बोली।

जमाल खाँ और नवाब की यह झल्लाहट आने वाली किसी अनिष्टता की वजह से थी, या इसकी कुछ और वजह थी कहना मुश्किल है। हाँ, अगर नसीबन इसमें दखल नहीं देती, तो शायद इस अनिष्टता की पदचाप साफ़ सुनाई दे जाती।

किसी को नहीं था इसका गुमान कि आज यह डमरू ऐसी बेहूदी बातें ले बैठेगा।

“ऐसो कर, रोटी खाली होएँ तो निवाज पढ़के चुपचाप सो जा... कहरो है के मैं हज्ज करण जाऊँगो। हज्ज कै कोई बातन् सू होवे है!” सबसे बड़े भाई जमाल खाँ ने कुल्ला करते हुए डमरू को डाँटा।

“और जो ई दुनिया कर-करके आरी है?” डमरू ने धीरे-से कहा।

“करके आरी है, पर वाको पहले पासपोरट बणवानो पड़े है और फिर दिल्ली जाके सिरकार सू इजाजत लेनी पड़े है।”

“ई कौन-सी बड़ी बात है, तैने भी तो बणवा राखो है। तोहे भी तो सिरकार सू इजाजत मिलगी ही। जैसे तोहे मिलगी, मोहे भी मिल जाएगी।”

“यार, तू तो ऐसे कहरो है जैसे ई काम बहोत आसान है। चल, पासपोरट बणगो और सिरकार सू भी इजाजत मिलगी, पर हज्ज पे जो दौलत खरच होएगी, ऊ कहान् सू आएगी?” इस बार कमाल खाँ ने असली जड़ बताते हुए डमरू का रास्ता रोकना चाहा।

डमरू एकदम चुप। देर तलक कुछ नहीं बोला।

तीनों भाई यानी जमाल खाँ, कमाल खाँ और नवाब ने कनखियों से एक-दूसरे की ओर देखा।

“याको मतलब या घर में मेरो कुछ ना है!”

दालान में छाई ख़ामोशी में मानो डमरू ने कोई कंकर उछाल दिया।

“किसने कह दी के तेरो या घर में कुछ ना है। अरे, जब या कमालू और नबाब को बिना हज्ज काम चलरो है, तो फिर तोहे हज्ज करणा की ऐसी कहा जरूरत आ पड़ी?”

डमरू से, अपने सबसे बड़े भाई जमाल खाँ के इस सवाल का कोई जवाब देते नहीं बना।

“देख, मेरी माने तो तू जमात पे निकल जा! अन्यायी, जैसी हज्ज वैसी जमात... और फिर तोहे जियारत सू मतलब है, चाहे ऊ हज्ज होए या जमात—कहा फरक मारे... सारी जियारत-इबादत एक-सी होवे है।” डमरू को चुप देख जमाल खाँ सलाह देते हुए बोला।

“कैसे होगी सारी जियारत-इबादत एक जैसी! अरे, तेरी जियारत तो जहाज में मजा लेती डोले, और ई डमरू बदना-गूदड़ी ए बाँध गाँओ-गाँओ में धूल फाँकतो डोले... ना, मैं तो हज्ज ही करुँगो!”

डमरू के मुँह से यह ऐलान सुन पूरा दालान स्तब्ध रह गया। जमाल खाँ को तो ऐसे लगा जैसे उसके सबसे छोटे भाई ने सबके सामने उसे तमाचा जड़ दिया। उसे ही नहीं कमाल खाँ और नवाब को भी इसकी उम्मीद नहीं थी कि यह डमरू इस तरह खुलेआम बग़ावत पर उतर आएगा। वही डमरू जिसने आज तक मजाल है अपने भाइयों के आगे मुँह तो खोला हो।

जमाल खाँ को ग़ुस्सा तो बहुत आया मगर न जाने क्या सोचकर खून का घूँट पीकर रह गया। कमाल खाँ समझ गया कि किसी न किसी तरह फिलहाल डमरू को शान्त करना है। उसने डमरू से नज़र बचाते हुए जमाल खाँ को ख़ामोश रहने का इशारा किया, और फिर बेहद संयमित लहज़े में बोला, “जमालू को कहणा को ऊ मतलब ना है। वाको मतलब है के एकाध महीना, पहले तू जमात में हो आ। जमात ए समझ ले पहले तू। मेरे यार, हज्ज करण तू जरूर जा पर तरीका सू जा।”

पता नहीं डमरू अपने बड़े भाई कमाल खाँ के इस तर्क से कहाँ तक और कितना सन्तुष्ट और सहमत हुआ, मगर इसके बाद वह कुछ नहीं बोला। इससे पहले कि वह यह तय कर पाता कि उसे मस्जिद में जाना है, या नोहरे में—इशा की अज़ान लग गयी।

“चलो रे, निवाज पढ़ लेओ! ई गीबत तो पीछे भी होती रहेगी।”

जमाल खाँ के इस आदेश भरे निर्देश पर डमरू समेत सारे भाई इशा की नमाज़ पढ़ने के लिए मस्जिद की ओर चल पड़े।

4

नमाज़ के बाद तीनों भाइयों का मस्जिद से घर लेना मुश्किल हो गया। नीम अँधेरे में डूबा मुश्किल से फर्लांग भर का रास्ता जैसे मीलों लम्बा हो गया। जमाल खाँ ने मस्जिद में नमाज़ियों की क़तार में देखा भी लेकिन डमरू उसे कहीं नज़र नहीं आया। यानी या तो वह इस मस्जिद में नमाज़ पढ़ने आया नहीं, या फिर दूसरी मस्जिद में चला गया।

जमाल खाँ अभी अन्दर सहन में दाख़िल होता कि उसने तीनों दौर-जिठानियों नसीबन, फ़ातिमा और आमना को आपस में किसी बात पर उलझते हुए सुना। जिस तेज़ी से उसके कदम मस्जिद से घर की ओर बढ़े आ रहे थे, उसी तेज़ी से जहाँ थे, वहीं ठिठक गये। उसने अपने दोनों भाइयों को वहीं रुकने का इशारा किया, और अन्दर चल रही बातचीत को ध्यान से सुनने लगा।

“मैंने ई कितनी बेर हाथ जोड़के समझा दी के तू याहे मत छेड़े कर, पर या रंडी ने मेरी सुणी होए जब न। अब राजी रहेगी जब या घर का पाड़-तिवाड़ हो जाँगा।” यह नसीबन थी जिसके लगभग भीगे हुए स्वर में कातरता घुली हुई थी।

“कमालू, यार तेरी भावज किस्सू कहरी होएगी हाथ जोड़ के समझाणा की बात?” जमाल खाँ ने फुसफुसाते हुए अपने छोटे भाई कमाल खाँ से पूछा।

“एक मिनट, ध्यान सू सुन!” अन्दर से आने वाली आवाज़ को सुन कमाल खाँ ने अपने बड़े भाई से कहा।

“तू तो मेरे ऊपर बिना टिकट चढ़ी जारी है। मैंने वासू मजाक ही तो करी है।” आमना यानी नवाब की पत्नी अपनी जिठानी को सफ़ाई देते हुए बोली।

“धसड़ी, मजाक भी होए करे हैं पर तैने तो वाके बर्छी-सी घुसा दी के ई तो थोड़ो-सो रंग-रूप ना दियो... दियो होतो तो पतो ना कैसी धरती ए फाड़तो!”

“आमना, नसीबन या बात ए तो ठीक कहरी है।” फ़ातिमा भी अपनी जिठानी नसीबन से सहमत होते हुए बोली।

“या कुलखणीचोद ए इतनो सहूर ना है के काई दिन वाके जी में आगी न, तो ई कलसंडा याकी खूसनी ए फाड़ देएगो!”

अपनी जिठानी के इस वाक्य पर फ़ातिमा की हँसी छूट गयी और अपनी दौरानी आमना को कोंचते हुए खिखियाई, “वैसे भी दारी, रुको हुओ मरद और बाँध को कोई भरोसा ना होवे है... पतो ना इनको ईमान कद खराब हो जाए।”

“ई रंडी, यही तो चाहवे है। ई जभी राजी रहेगी जब काई दिन याहे ऊ हरी कर देएगो!” नसीबन ने दाँत पीसते हुए आमना को डाँटा।

इससे पहले कि तीनों दौर-जिठानियों की यह नोंक-झोंक और आगे बढ़ती, जमाल खाँ मठारते हुए अन्दर दाख़िल हो गया।

जमाल खाँ सहित सारे भाई समझ गये कि इस फ़साद की असल जड़ यह आमना है। मगर अगले ही पल सोचा कि देवर-भावज के बीच हुआ ऐसा हँसी-ठट्ठा, चाहे वह कितना भी तीखा क्यों न हो, इतने बड़े फ़ैसले, वह भी हज पर जाने का, के लिए नहीं उकसा सकता।

तीनों भाइयों के दाख़िल होते ही घर में चुप्पी छा गयी। ऐसी चुप्पी, मानो यहाँ कुछ हुआ ही नहीं। बड़ी चतुराई से तीनों दौर-जिठानी अपने-अपने कामों में ऐसे जुट गयीं, जैसे उन्हें दीन-दुनिया का कुछ पता ही नहीं है।

इशा की नमाज़ के बाद जहाँ सारा घर इससे पहले इस वक़्त सोने के मीजान में लग जाता, आज मानो किसी को नींद नहीं आ रही है। जमाल खाँ देर तक मनन करता रहा उस जड़ की तह तक पहुँचने के लिए, जिसकी वजह से जिस डमरू ने अपने बड़े भाइयों से कभी नज़र नहीं मिलाई, उसने कैसे आज सारी सीमाओं और वर्जनाओं को लाँघते हुए अपना लिहाफ़ उतार कर फेंक दिया? आख़िरकार उसे एक ही रास्ता नज़र आया। क्या पता इसी से कुछ पता चल जाए।

“अरे फजल, अपणी माँ ए भेजियो!” जमाल खाँ ने अपने लड़के को आवाज़ देते हुए कहा।

नसीबन जैसे पहले से इसके लिए तैयार बैठी थी।

“तोहे कुछ अन्दाजो है के ई डमरू आज कैसे उखड़रो है। कैसे याको ब्यौहार बदलगो है?” जमाल खाँ ने पत्नी से पूछा।

“ना, मोहे तो कुछ पतो ना है।” नसीबन ने घर की मुखिया होने के नाते अपना फ़र्ज निभाते हुए, मामला निपटाना चाहा।

“तो फिर, तम तीनूँ दौर-जिठानी आपस में काँई बात पे जिदरी ही?” कमाल खाँ ने अपनी भावज के झूठ को पकड़ते हुए कहा।

“अच्छो ऊऽऽऽ! ऊ तो मैं या हरामण आमना ए डाँटरी ही के तू या डमरू ए जादा मत छेड़े कर... पर ई रंडी माने जब न। वैसे ऐसा हँसी-ठट्ठा तो देवर-भावज में चलता रहवे हैं।” हँसते हुए नसीबन ने बड़ी सफ़ाई से मामले को दबाने की कोशिश की।

“फिर ई डमरू किसने भड़काओ है?” इस बार जमाल खाँ इस उलझी हुई गिरह को सुलझाने की कोशिश करते हुए, पूरे दालान को सुनाते हुए ख़ुद से बोला।

इसी बीच फ़जल ने जो सुराग़ दिया, उसे सुनते ही तीनों भाइयों का चेहरा तमतमाता चला गया।

“अऽऽब समझ में आयी के ई सारी बिद्या वा लपरलेंडी की पढ़ाई हुई है। ई सारी आग वाही की लगाई हुई है।” जमाल खाँ ने उचकते हुए कहा।

“वैसे, या लपरलेंडी का चौतरा पे कोई और भी बैठो हो?” नवाब ने और गहरे में उतरते हुए पूछा।

“हाँ, ऊ फकीरा भी बैठो हो।” फ़जल ने बताया।

“जभीऽऽ तोऽऽऽ! मैं भी तो कहूँ के ई डमरू ना, वाके भीतर कोई और ही बोल रो है। ई सारी लंका वा लपरलेंडी और वा चकलेंडी फकीरा की फूँकी हुई है।” कमाल खाँ ने मुंडी हिलाते हुए कहा।

“कमालू, यार अभी चल... पहले या जुगलजोड़ी को इलाज करके आएँ।” रहस्य से परदा उठते ही नवाब तमतमाते हुए बोला।

“ऐसी बेकूपी मत करियो। या जुगलजोड़ी ए तो पीछे भी देख लेंगा। फिलहाल काई तरह या डमरू को इलाज करो। कैसे भी याहे लेन में लाओ पहले!” जमाल खाँ ने सारा ध्यान अब डमरू पर केन्द्रित करते हुए, पूरे दालान से इस समस्या का समाधान करने की गुहार की।

“मैंने बतायो तो हो इलाज के याहे फिलहाल जमात कू तैयार करो। महीना-ड़ेढ़ महीना पीछे अपने आप ठंडो हो जाएगो।” कमाल खाँ ने एक बार फिर अपना तरीक़ा आजमाने का सुझाव देते हुए कहा।

“वैसे मैं एक बात कहूँ, अगर तीनूँ भाई बुरा ना मानो तो?”

नसीबन के इतना कहते ही पूरे दालान की नज़र उस पर ठहर गयी।

“मेरी मानो तो कहीं सू कोई बुरी-बावली लाके याका गला में बाँध देओ। अपणे आप लेन में आ जाएगो।”

“कहा कही, कोई बुरी-बावली लाके याका गला में बाँध देओ! तेरो दिमाग तो खराब ना होगो है! याहे अब कौण ओटेगो?” जमाल खाँ ने पत्नी को डाँटते हुए कहा।

“जब उमर ही अगर जभी याका खूँटा सू काई ए लाके बाँध देता, तो आज ई नौबत ना आती। तमने तो ई सोच राखी है के मुफत को बधिया बैल है, जोत लेओ जितनो जोतो जाए... भाई तो तमने ई कदी मानो ही ना।” नसीबन भरे हुए मन से बोली।

नसीबन की इस मलामत पर तीनों भाइयों से कुछ भी कहते नहीं बना। बनता भी कैसे, नसीबन ने कुछ ग़लत थोड़े ही कहा है। गहराती रात पर तेज़ी से चढ़ती अँधेरे की परत के बीच दालान में सन्नाटा-सा छा गया।

“और अगर ई डमरू चुप रहे, तो या घर की एक मलूकजादी वाहे चुप ना रहण देए। जब देखो वाहे बेमतलब कौंचती रहवे है। ई तो ऊ बात होगी के राँड तो रँडापा काट लेए, पर ये ढेड रँडुआ काटण देएँ जब न!” परोक्ष रूप से फ़ातिमा अपनी दौरानी आमना की ओर इशारा करती हुई झल्लाई।

“जो बीतगी, वापे माटी गेरो। अब कोई रस्ता ढूँढो!” जमाल खाँ ने एक बार फिर सबसे गुहार की।

“वैसे अभी भी कुछ ना बिगड़ी है। कहीं सू कोई पारो लाके याका गला में लटका देओ।” नसीबन ने अपना पुराना सुझाव दोहराते हुए कहा।

“तैने ई कहा रट लगा राखी है। कदी कहरी है याका गला में कोई बुरी-बावली लाके बाँध देओ, तो कदी कहरी है कोई पारो लाके लटका देओ! तू ऐसे कर, अपणी या सलाह ए धरी राख।” जमाल खाँ ने इस बार नसीबन को बुरी तरह झिड़क दिया।

“या काम ए करवा के तो तू जरूर या घर का पाड़-तवाड़ करवाएगी।” अपने बड़े जेठ का समर्थन मिलते ही आमना ने एक तरह से अपनी जिठानी के सुझाव में पलीता लगा दिया।

“ये सारा बीज तेरा ही तो बोया हुआ है गुंडी! कदी तू वाहे कळसंडा कहवे है तो कदी कुछ।” नसीबन ने इसके बाद नोहरे में आमना द्वारा कही गयी सारी बातें बता दीं।

नसीबन का इतना कहना था कि नवाब तमतमाते हुए तेज़ी से अपनी पत्नी आमना की ओर लपका, “तेरी माँ का चुदाया में, तेरो ही फूटो जारो है सारो जोबन और रूप। ऐसी भी हूर की परी ना है तू!”

यह तो ग़नीमत था कि बग़ल में बैठे कमाल खाँ और फ़जल ने नवाब को रोक लिया वरना आमना की आज अच्छी-ख़ासी आरती उतर जानी थी। उधर फ़ातिमा भी जैसे फूट पड़ी, “तू भी आमना बेमतलब फटा में पाँव देती फिरे है। पतो ना, या डमरू सू तोहे कहा बैर है जो ई तोहे फूटी आँख ना सुहावे है। हमारी तो कुछ समझ में ना आरी है के आखर तू यासू कहा चाहवे है!”

“चाहवे कहा, ई जभी राजी रहेगी जब काई दिन ऊ याके लिपट जाएगो।”

“हूँऽऽऽ लिपट जाएगो... या भोला में मत रहियो... हरामी ए कच्चो चबा जाऊँगी।” आमना अपने पति नवाब के कहे पर फुँफकारते हुए बोली।

“तो फिर तू अपणी माँए चुदाण कू वाहे छेड़े है। बेमतलब, आ बैल मोहे मार!” नवाब ने डाँटते हुए कहा।

नवाब और आमना यानी पति-पत्नी की इस नोंक-झोंक में किसी ने बाधा डालना ठीक नहीं समझा। बस, लोकाचार का पालन कर सब चुपचाप देखते रहे।

“चलो छोड़ो, अभी सोओ! याहे पीछे देखँगा।” बात को यहीं खत्म कर जमाल खाँ खड़ा हो गया कि कहीं ऐसा न हो कि नसीबन के सुझाव का उसकी दौरानी फ़ातिमा भी समर्थन कर बैठे। ख़ुदा-न-खास्ता यह बात डमरू तक पहुँच गयी, तो ऐसा न हो कि जो डमरू आज हज जाने की बात कर रहा है, कल सचमुच वह इसकी ज़िद कर बैठे जैसे उसकी भावज नसीबन कह रही है। इससे पहले कि नसीबन अपने देवर डमरू के भविष्य को लेकर और भावुक होती, जमाल खाँ इस मुद्दे को यहीं दफ़न कर दालान से बाहर निकल आया।

5

पूरे घर की पेशानी पर चिन्ताओं की अलग-अलग लकीरें खिंच आयीं। भले ही डमरू जमाल खाँ, कमाल खाँ और नवाब का सगा भाई है, और नसीबन, फ़ातिमा व आमना का सगा देवर, परन्तु इससे भी बड़ी बात यह है कि वह इस घर का एक सदस्य भी है। इस घर की एक-एक दर-ओ-दीवार पर जितना हक़ औरों का है, उतना ही डमरू का भी है। मगर औरों की तरह उसका यह हक़ उसके ही गले की फाँस बन गया है। हालाँकि बात यहाँ हज करने या जमात पर जाने की नहीं है, बात बक़ौल नसीबन कहीं से कोई बुरी-बावली पारो लाकर डमरू के गले में बाँधने की भी नहीं, बात असल में कुछ और है जिसे यह घर अच्छी तरह जानता है।

आमना ने तो जब से अपनी बड़ी जिठानी का यह सुझाव सुना है, तभी से उसके पेट में मानो घमेर-सी उठ रही हैं। कल्पनाभर से उसके पाँव ठंडे पड़ने लगे हैं। आज वह अपने आप को रह-रहकर कोसती है कि क्यों नहीं उसने नसीबन द्वारा समझाने के बावजूद उसकी बात पर ध्यान दिया? क्यों उसके बार-बार चेताने के बावजूद उसकी यह बात समझ में नहीं आयी। अगर सचमुच नसीबन के सुझाव ने मूर्त रूप ले लिया, तो आमना कहीं की ना रहेगी।

अब आमना क्या करे?

रातभर आगामी अनिष्टता की गिरहों को सुलझाते-सुलझाते उसकी सोच के पोर दूखने लगे। इस बीच उसे कब नींद आ गयी, पता नहीं चला। हाँ, फ़ज्र की अज़ान लगने पर ही उसकी आँखें खुलीं, तो पिछली रात का एक-एक दृश्य फिर से ताज़ा हो उठा। एकाएक इन दृश्यों के ताज़ा होते ही उसका पूरा जिस्म ऐंठने लगा। हालाँकि फ़ज्र की नमाज़ तो वह बाकी की चारों नमाज़ों की तरह भी अदा नहीं करती है, मगर आज उसने तय कर लिया कि वह हर हालत में फ़ज्र की नमाज़ पढ़ेगी, और फिर पढ़ी भी।

आज पिछले कुछ दिनों की अपेक्षा उमस कुछ कम ही नहीं बल्कि भादों की घाम भी ज़्यादा है। इतनी ज़्यादा कि देह से पसीना ऐसे चू रहा है मानो किसी ने पानी से भरा बदना उँडेल दिया हो। इतनी उमस और गरमी के बावजूद आमना की नसों में दौड़ता लहू रात के दृश्यों को याद करते ही जमने लगता।

आमना ने चारों तरफ़ बड़ी बारीकी से देखा परन्तु वह उसे कहीं दिखाई नहीं दी। बहुत खोजा उसने। आख़िरकार बड़ी कोशिशों के बाद वह दिखाई दी, तो वह तेज़ी से उसकी ओर लपकी हुई गयी। उसने एक बार आसपास का मुआयना लिया और जब उसे पूरी तसल्ली हो गयी, तब बेहद सधे हुए अन्दाज़ में हिम्मत बटोरते हुए बोली, “फातिमा, बहाण तोसू एक बात कहणी है!”

फ़ातिमा ने कोई ध्यान नहीं दिया।

“बहाण तू सुणरी है के ना?” आमना ने अपने धीरज पर क़ाबू करते हुए कहा।

“हाँ कह न, मैं सब सुणरी हूँ।”

“हमारी ई जिठानी रात कू कहा कहरी ही?”

“कहा मतलब?” फ़ातिमा ने झटके से पलटते हुए उलटा आमना से पूछा।

फ़ातिमा ने पलट कर जिस तरह आमना से पूछा, आमना अकबका गयी, “यही... यही के कहीं सू कोई बुरी-बावली लाके या डमरू का गला में बाँध देओ।”

“ना कहे तो कहा करे, तैने या डमरू को जीणो जो हराम कर राखो है। आते-जाते जब मन करे तू वाके आँगली तोड़ती रहवे है। मैं तो कहूँ के जैसी भी मिले वाहे याके बैठा-बैठू के अलग हटो।”

फ़ातिमा द्वारा भी नसीबन के सुझाव का समर्थन सुनते ही आमना जैसे धड़ाम् से गिरी, “फा... फातिमा, मेरी बहाण तू भी नसीबन के साथ है?”

“यामें साथ की कहा बात है। जब कोई वाहे चौबीस घंटा कोंचतो रहेगो, तो यही काम करनो पड़ेगो।”

“पर तू थोड़ी देर कू ई तो सोच के अगर या घर में कोई चौथी आगी, और या जमीन-जादाद में सू अपणो हिस्सा-पाणी माँगण लगी तो?”

“क्यों, जब हमारो हिस्सा हो सके है, तो वाको भी हो जाएगो।”

“बहाण, फिर तो याको मतलब ई हुओ के, आज तो या जादाद में तीन हिस्सा हैं... कल यामें चार हो जाँगा?”

आमना ने अन्ततः अपने दिल की बात अपनी जिठानी फ़ातिमा से कह ही दी। रातभर अनर्थ और अनिष्टताओं की जिन गिरहों के सुलझाते-सुलझाते नाजुक पोर छिल-छिल गये थे, और जिनसे मुक्त होने की कामना में उसने पहली फ़ज्र की नमाज़ अदा की थी, एक बार फिर से उनमें उलझती चली गयी—यानी इस अनहोनी और अनर्थ को टालना अब मुश्किल है। इनसे बचने की उसकी सारी तरतीबों व तरकीबों ने जैसे हाथ खड़े कर दिये।

“चोखो बहाण, जब सब मटियामैट करणा पे तुला हुआ हैं, तो फिर मैंने ही कौन-सो याको ठेका ले राखो है।”

हारे हुए निहत्थे की तरह गहरी साँस ले आमना वापस जाने के लिए मुड़ी, कि पीछे से उसे फ़ातिमा ने टोका, “सुन!”

आमना धीरे-से वापस पलटी।

“ऐसे करियो, जुहर की निवाज के बखत डहर वाला खेत पे मिलियो।” फ़ातिमा ने एक कुटिल मुस्कान उछालते हुए आमना के चेहरे से मायूसी की धुंध पोंछते हुए कहा।

आमना ने अपनी जिठानी फ़ातिमा की इस मुस्कान को बाँचने में थोड़ी-सी भी चूक नहीं की। जिस मायूसी के साथ वह फ़ातिमा के टोकने पर मुड़ी थी, इस मुस्कान ने उसके जमे हुए ख़ून को मानो गति प्रदान कर दी। न जाने कहा से अचानक आसमान से बादल का एक विशाल चकत्ता आया और देह झुलसाते सूरज पर छा गया। आमना तेज़ी से वापस लौटी और बेसब्री से ज़ुह्र की अज़ान का इन्तज़ार करने लगी।

6

आमना भले ही मुसलसल पाँचों वक़्त की नमाज़ नहीं पढ़ती है। मगर नमाज़ की सारी सात शर्तें और तरक़ीबें उसे मालूम हैं। नमाज़ पढ़ने से पहले बदन का पाक होना, कपड़ों का साफ़ होना, जहाँ नमाज़ पढ़ी जाती है उस जगह का साफ़-सुथरा होना, सतर का छिपा होना, क़िबले की तरफ़ मुँह करना और नीयत करना यानी यह इरादा करना व ध्यान लगाना कि मैं फलाँ नमाज़ पढ़ रही हूँ—जैसी सारी शर्तों को अच्छी तरह जानती है। वुज़ू या ग़ुस्ल के दौरान फ़र्ज़, वाजिब, सुन्नत, सुस्तबह, मक्रूह जैसे ज़रूरी क़ायदों का उसे पूरा ज्ञान है। इसीलिए उसे लगता है कि यह सब फ़ज्र की नमाज़ का ही असर है कि जो फ़ातिमा उसे पहले मुँह नहीं लगा रही थी, वही उससे डहरवाले खेत पर मिलने के लिए कह रही है। अगर एक नमाज़ इतना असर कर सकती है, तो पाँचों वक़्त की नमाज़ अदा करने का क्या असर होगा, और पाँचों वक़्त का इतना असर होगा तब रोज़े रखने का कितना असर होगा—सोचते हुए आमना की आँखें अपने परवरदिगार की स्तुति में मुँदती चली गयीं कि ऐ मेरे अल्लाह, इस घर को किसी तरह इस अजाप से बचा ले। मैं इस बार बिना नागा सारे रोज़े रखूँगी।

आमना ने अन्दाज़ा लगाया कि ज़ुह्र की नमाज़ का वक़्त होने वाला है। इसलिए क्यों न नमाज़ पढ़ कर ही खेत पर जाया जाए। क्या पता जैसा वह सोच रही है वैसा ना हो। उलटा फ़ातिमा उसे किसी दूसरे मक़सद से बुला रही हो। इसलिए वह नमाज़ पढ़ कर जाए तो ज़्यादा ठीक रहेगा। यही सोच कर वह नमाज़ की तैयारी करने लगी।

नमाज़ पढ़ने के बाद आमना को लगा जैसे वह किसी अँधेरी सुरंग से निकल कर किसी उजाले से भरी दुनिया में आ गयी है। एक राहत भरे सुकून से पूरा ज़िस्म रुई की मानिंद किसी पतंग की तरह हल्का होता चला गया। भादों की ठंडी-ठंडी पुरवाई जब-जब पीछे से हरहरा कर उससे टकराती, तब-तब उसकी चाल में और तेज़ी आ जाती। तभी उसने देखा एक पतंग कट कर हवा में लहराती हुई तेज़ी से उसके ऊपर से गुज़री है और उसके पीछे-पीछे बदहवास पतंग लुटेरों की छोटी-सी टोली, उसे लूटने के लिए भागी जा रही है। हवा में तैरती इस आवारा पतंग को देख आमना के होंठों पर एकाएक, अपनी बड़ी जिठानी नसीबन द्वारा अक़्सर गुनगुनाये जानेवाली ये शोख़ पंक्तियाँ इतराने लगीं—

मेरा राजा की उड़ी पतंग
मैं हुचका पे खड़ी
मेरा राजा की कटी पतंग
मैं लुटवा के चली।

इसी बीच आमना की तन्द्रा भंग हुई। उसने देखा कि एक किशोर पतंग लुटेरे ने किलकते हुए इस पतंग को ज़मीन पर गिरने से पहले हवा में ही लूट लिया। बहुत बुरा लगा आमना को कि ज़मीन छूने से पहले इस पतंग को हवा में लूट लिया गया है। आमना के होंठ वक्र होते चले गये और मन ही मन यह कहते हुए कदम तेज़ी से डहर की ओर बढ़ा दिये कि, वह इतनी आसानी से अपने राजा की पतंग नहीं लुटने देगी।

7

"रंडी, कहान् घुसी पड़ी ही इतनी देर सू! मैं तेरी हीं कद सू बाट देखरी हूँ!" आमना के आते ही फ़ातिमा ने तमतमाते हुए शिकायत करते हुए कहा।

"निगोडी, निवाज पढ़न् लग्गी ही। सोची के जब निवाज को बखत हो ही गयो है, तो क्यों ना पढ़ ही लूँ।" आमना ने देर से आने की वजह बताई।

"तू गधी कुम्हार की, तोहे कहा राम सू हेत... तू कद सू निवाज पढ़न् लग्गी?" फ़ातिमा ने हैरानी से पूछा।

"दारी, पढ़ली तो कौण्-सो गुनाह कर दियो।" इस बार आमना ने पलटवार करते हुए कहा।

"और मैं जो हीं धुप्परयाई में मरी जारी हूँ! वा बहाण, तू भली चतर की चोदी निकली... मैं तो बिठा दी या धूप में और खुद सहजादी..."

"अच्छो छोड़ या गपड़चौथ ए। पहले वा बात ए बता जाहे बताण कू तेरो हियो फटो जारो है!" आमना ने फ़ातिमा को टोकते हुए कहा।

"बात कहा, तोहे पतो ना है?" फ़ातिमा ने प्रतिप्रश्न करते हुए पूछा।

"बहाण, पतो है जभी तो गिरती-पड़ती आयी हूँ।" आमना ने गहरा साँस लेते हुए कहा।

"देख, ऐसे घबराणा सू काम ना चलेगो। मिल-बैठ के ठंडा दिमाग सू ऐसो रस्ता निकालणो पड़ेगो, जासू साँप भी मर जाए और लाठी भी ना टूटे।" फ़ातिमा अपनी दौरानी आमना की निराशा को कम करने की कोशिश करते हुए बोली।

"ऊ ढेड रस्ता ही तो समझ में नहा आरो है।"

"आमना, बुरो ना माने तो एक बात कहूँ... एक तो तू अपनी या काली जुबान एक काबू में राख। हरामण, सारी फिसाद की जड़ तेरी ई जुबान है। पहले तू अपणो तौर-तरीका बदल। बहाण, एक चुप सौ बोलन्ने हरावे है।"

आमना कुछ नहीं बोली। बस, चुपचाप सुनती रही।

"वैसे हमारी ई जिठानी नसीबन मन की बुरी ना है। तोहे पतो ना है ई डमरू जब छोटो-सो हो जभी सू हमारी या जिठानी ने माँ की तरह पालो हो... अब तू समझ सके है के जाने कोई बालक माँ सू भी बढ़के पालो होए, ऊ वाके साथ अन्याव होतो कैसे देख सके है। देख, मेरी बात को बुरो मत मानियो। अब ई सोच के करणो कहा है।"

"याही मारे तो मैं तेरे पै आयी हूँ।" आमना एक बार फिर गहरी निराशा में उतरती चली गयी।

"देख, आदमी इतनो बाहर वाला को बुरो ना माने जितनो घरइय्यान को माने है... समझरी है न तू, मैं कहा कहरी हूँ। बड़ा-बूढ़ा ऐसे ही ना कहके गया हैं के—

कग्गा कसको धन हड़े, कोयल कसकू देय ।
बोली में इमरत बसे, जासू जग अपणो कर लेय ।।

मेरी माने तो थोड़ा-सा दिन अपणी बोली में इमरत तो खैर ना, थोड़ो-सो रस ही घोल ले।"

"ठीक है, अब मैं अपणी बोली में इमरत ही घोल के दिखाऊँगी...पर हमारी जिठानी ने जो बीज बो दियो है वासू कैसे पिंड छूटेगो?" आमना झल्लाते हुए बोली।

"या काम ए अब तू मेरे ऊपर छोड़ दे। नसीबन ए मैं देख लूँगी। बस तू अपणा मुँह पे ताला लगा के राख।" फ़ातिमा ने फिर से याद दिलाते हुए कहा।

"मैंने मान तो ली है तेरी बात। बस, अब तू ई बता के मोहे करणो कहा है?"

आमना से पूरी तरह आश्वस्त होने के बाद फ़ातिमा ने चारों तरफ़ दूर तलक फैली आदमकद हरी चादर को पंजों के बल उचक कर जाँचा, और जब उसे यक़ीन हो गया कि आसपास तो क्या दूर तक कोई भेदिया नहीं है, तब उसने पहली दफ़ा अपनी सिंगारवाली दौरानी के सामने अपनी सम्भावित कार्य-योजना से हल्का-सा आवरण हटाया।

"देख, हमन्ने कैसे भी सबसू पहले ई डमरू जमात कू राजी करणो है... अब ई कैसे तैयार करणो है, याही को जुगत लगाणो है। अगर ई एक बर राजी होगो न, तो समझ ले आधो फंद अपणे आप कट जाएगो... महीना-बीस दिनाँ की छुट्टी हो जाएगी।" इसके बाद फ़ातिमा धीरे-से आमना की तरफ़ खिसक कर उसके एकदम नज़दीक आयी, और उसकी आँखों में आँखें डाल फुसफुसाते हुए बोली, "रंडी, एकाध साल की बात और है। काई तरह ये कट जाएँ, फिर तो ई अपणे आप ही ठंडो पड़ जाएगो।"

"ठंडो पड़ जाएगो, मैं कुछ समझी ना?" आमना ने सहज भाव से पूछा।

"आमना, तू भी निरी बूबक है... ठंडा होणा को मतलब है के हमारी जिठानी नसीबन, जो हर तीसरे दिन या डमरू का गला में बाँधना की बात करे है न, ई राग अपणे आप खतम हो जाएगो।"

"पर या बात को डमरू का ठंडा होणा सू कहा मतलब है।" आमना अभी भी नहीं समझ पाई।

"आमना, दारी तू भी पूरी कुलखणीचोद लगे है... सारी बात ए खुल के कहवाणी चाहरी है... ठंडा सू मेरो मतलब है के एकाध साल में यामें बचेगो ही कहा... ई लुगाई-वुगाई सब ए भूल जाएगो।"

"सारो रोणो तो यही है... डमरू तो भूल जाए, पर ई हमारी जिठानी भूलण देए जब न।"

"अगर नसीबन ना भूलण देएगी, तो फिर हम किस मरज की दवा हैं... हम तैयार करँगा वाहे। बावली, थोड़ा दिन पीछे याहे कैसी भी ना मिलेगी और अगर मिल भी गयी तो

ऊ ना रुकेगी याके... बीरबाणी को रोकणो हरेक मरद के बस की बात ना है मेरी बहाण।"

"वैसे यामें कहा कमी है? थोड़ो-सो रूप-रंग ही तो ना है। बाकी तो सबकुछ है।" आमना ने फ़ातिमा की कार्य-योजना पर सवाल खड़ा करते हुए कहा।

"तैने ई कद परख लियो जो तू याकी गवाही दे री है?" देखते ही देखते फ़ातिमा की आँखों में शरारत नाचने लगी, "कहींऽऽऽ ऐसो तो ना है के काई दिन मौका देखके नोहरा में तू या कळसंडा ने धर दबोची होए!"

"चल छिनाल, तू भी जो जी में आये बकती होवे है।" भादों की तल्ख़ धूप और उमस में पसीजी आमना के सुर्ख़ गालों पर तिरमिराती पसीने की बूँदें मारे हया के शरमाती चली गयीं।

"वैसे एक बात कहूँ, ईमान सू एक बर या कळसंडा के कोई हत्थे चढ़गी न, तो वाहे ई मचकण भी ना देएगो। याके नीचे पड़ी ऊ कसमसाती भले ही रहे, पर ई एक बर तो वाहे हुचका की रील-सी सूँत देएगो।" एक अप्रत्याशित कल्पना कर फ़ातिमा मुँह पर डाठा लगा, अपनी हँसी को मुश्किल से रोकते हुए बोली।

"याही मारे तो मोहे नोहरा में जाणा सू डर लगे है... ढेड, ऐसे घूर-घूर के लखातो रहवे है जैसे मोहे कच्ची ही निगल जाएगो, और तू कहरी है के ई एकाध साल पीछे-ठंडो पड़ जाएगो। एक दिन तो पतो है मोहे देख के कहा कह रो हो?"

"कहा कहरो हो?" फ़ातिमा के भीतर जैसे सरसराहट-सी होने लगी। आँखें मारे जिज्ञासा के एक नये रहस्य जानने के लिए फैलने-सिकुड़ने लगीं।

"कहरो हो के—

ना तू घणी मलूक है, जो हरदम सुमरू तोए ।
सज-मज के आगे खड़ी, तेरी अदा मारगी मोए ।।"

"ऐ खुदा तोड़ी, या डमरू ने ऐसे कही ही।" मारे रोमांच के फ़ातिमा की पूरी देह पर चींटियाँ-सी सरसराने लगी।

"तो कहा मैं कोई झूठ बोल री हूँ।" मैं तो वा दिन सू बहाण यासू बचके निकलू हूँ। ऐसा को कहा भरोसो, मौका देखके कद धर दबोचे। मरद है, कद ईमान डिग जाए, कहा पता।"

"ई बात तो तेरी सही है आमना। ऐसा रुका-ठुका माणस पे तो कतई भी भरोसा ना करणो चहिए। ऐसा सू तो दो बोल हँस के बात करणा में भी डर लगे है... ना बहाण, अपना आपा ए बचाणा में ही भलाई है।" फ़ातिमा ने अपनी दौरानी को 'अपनी सुरक्षा, अपने हाथ' सिद्धान्त पर अमल करने की सलाह देते हुए कहा।

"तेरी सारी बात मेरी समझ में आगी है। तू चिन्ता मत कर, या कळसंडा ए मैं ऐसो सीसा में उतारुँगी के ई तो कहा याका फरिस्ता भी जमात में दौड़ा-दौड़ा जाँगा, फिर ई तो

किस बाड़ी को बथुआ है। मैं भी असल सिंगार की ना, जो मैंने ई डमरू जमात में भिजवा के ना दिखा दियो।"

"बस, याही मारे मैंने तू हीं बुलाई ही। चल, खड़ी हो असर की निवाज को टैम भी होगो।" अपनी योजना को अमली जामा पहना फ़ातिमा घर जाने के लिए खड़ी हो गयी।

खेत से घर आने तक कई पतंगें कट कर लहराती हुईं और उनके पीछे-पीछे भागते लुटेरे फ़ातिमा और आमना के अगल-बग़ल से गुज़रते रहे, मगर इस बार आमना का इन पर ध्यान नहीं गया। कैसे जाता। इस बार उसका ध्यान इन पतंगों पर नहीं बल्कि अपने देवर डमरू को जमात में भेजने की जुगत में जो लगा हुआ है। अब इसका ध्यान न तो अपने राजा की उड़ती पतंग के हुचके को कस कर पकड़ने पर है, न उसके लुटने पर। उसने तो अपना सारा ध्यान अपने देवर को ठंडा करने पर केन्द्रित किया हुआ है।

पर यह क्या? अचानक एक पतंग कट कर उसके सामने आकर गिरी। आमना जब तक कुछ समझ पाती, तब तक लगभग आधा दर्ज़न पतंग लुटेरे एकसाथ उस पर टूट कर पड़े। इस छीना-झपटी में पतंग चिंदी-चिंदी हो इन लुटेरों के हाथों में आ गयी। अपनी इस बेमानी कामयाबी पर सब एक-दूसरे को देखकर आपस में खिसियाने लगे। इस दृश्य को देख आमना अन्दर तक सिहरती चली गयी। जब तक वह इस अनिष्टता से उबर, पलटकर अपनी जिठानी की ओर देखती, फ़ातिमा और उसके बीच का फ़ासला काफ़ी हो चुका था। वह तेज़ी से फ़ातिमा की ओर बढ़ गयी। जिन पंक्तियों को वह लगभग भुला चुकी थी, अचानक वे आमना के अन्तर्मन में एक दुस्साहस भरी कम्पन पैदा करने लगे—*मेरा राजा की कटी पतंग/मैं लुटवा के चली।*

8

डमरू रातभर इसी सोच में डूबा रहा कि लगता है कि हज करना उसके नसीब में नहीं है। यही सोच उसने मन को यह कर समझा लिया कि हज न सही, जमात तो है। वैसे भी हज करके कौन-सा उसे 'हाजीजी' कहलाना है। इतना ही ग़नीमत है कि उसके भाई जमात के लिए तैयार हो गये। अगर वे इसके लिए भी तैयार नहीं होते, तो वह कौन-सा उनकी पूँछ उखाड़ लेता। एक मुफ़्त का बलद जमात तो कर आएगा। कम से कम इस बहाने उसके कुछ दिन इबादत में तो कट जाएँगे। कुछ दिनों के लिए उसे इस हाड़-तुड़ाई से मुक्ति तो मिल जाएगी। एकाएक डमरू को हज के बजाय जमात के अनेक फ़ायदे नज़र आने लगे। रही बात इस सिंगारवाली भावज की, तो उसके कहने से क्या फ़र्क पड़ता है। है तो भावज, ऐसी छोटी-छोटी बातों पर क्या ध्यान देना। अगर भावजें ही उससे चुहल या छेड़खानी नहीं करेंगी, तब कौन करेगी। भाइयों से उसकी क्या शिकायत। भला, कहीं भाइयों से भी नाराज़ हुआ जाता है। अरे, भाई तो मारेंगे भी, तो कम से कम छाँव में डाल देंगे। इस हज के चक्कर में कहीं ऐसा न हो कि वह अपने भाइयों से भी हाथ धो बैठे। नहीं, उसे ही अपना दिल बड़ा करना होगा। वैसे भी भाई-भावजों के उसका दूजा है कौन। सोचते-सोचते डमरू की आँखें पनीली हो उठीं कि—

मेरा वे भाई कितलू (कहाँ) गया, जो हा दिल का परखनहार ।
वे सुपना में भी ना मिला, दिन में जो मिले हा सौ-सौ बार ।।

डमरू ने हज का इरादा छोड़ अपने मन को जमात के लिए तैयार कर लिया। हाँ, बक़ौल सबसे छोटी भावज आमना, उसकी बड़ी भावज नसीबन ने कहीं से कोई बुरी-बावली लाकर उसके गले में बाँधने का जो सुर्रा छोड़ा था, उसकी कल्पना से डमरू के जिस्म के भीतरी हिस्सों में रह-रहकर सरसराहट-सी ज़रूर होने लगी है। इसकी कल्पना मात्र से उसका अंग-प्रत्यंग और पोर-पोर चटकने लगता है। जब से उसने अपनी बड़ी भावज के मुँह से यह सुना है, तब से वह कई बार नोहरे में जाकर अपने उसी धुँधले पड़ चुके और जगह-जगह से झड़ चुके बहुकोणीय आईने में अपने आपको निहार चुका है। बाँकपन के बचे कुछ अंशों को वह रह-रह कर सहलाता, तो सुप्त मछलियों की शिराओं में सहसा मानो आवेग-सा दौड़ने लगता। अगर रंग-रूप को थोड़ी देर के लिए छोड़ भी दिया जाए, तो उसकी इन भुजाओं की मछलियों में इतनी तो ताक़त है कि एक बार इनकी गिरफ़्त में कोई आ गयी, तो मजाल है वह इनसे आसानी से खुद को छुड़ा तो जाए। नसीबन की सलाह डमरू की शिराओं और

धमनियों में जैसे नये प्रवाह का संचार कर गयी। उसके भीतर उम्मीदों की किलकारियाँ गूँजने लगीं।

कलसंडा यानी डमरू को इसका बिलकुल भी गुमान नहीं था कि नोहरे में इस समय कुछ चौपायों व उसके अलावा कोई और भी मौजूद है। वह तो पूरी तन्मयता और तल्लीनता के साथ भैंस का दूध दुहने में जुटा हुआ है। हाँ, बीच-बीच में कुछ याद आ जाता, तो गुनगुना लेता। इस वक़्त भी उसके होंठों से एक 'होली' की पंक्तियाँ झर रही हैं। पंक्तियाँ भी किसकी, अपने सबसे पसन्दीदा लोककवि की। उस लोककवि 'एवज' [1] की जो ऐसे ही विरक्ति के समय अक्सर याद आता है—

उठ गयी प्रीत-परीत, टूट गया नाता-रिस्ता
मया-मोह कित गया, पड़ा भाईन में भाँता
मतलब की संसार है, मतलब की संसार
माया की सब दोस्ती, नहीं अच्छी ढूँढे नार
कलजुग आयो बुरो जमानो ।

"देवर, किसकी किस्सू पिरीत उठगी?"

अचानक जेठ-षाढ़ के महीने में किसी आवारा बादल से गिरे दोंगड़ों ने डमरू की एकाग्रता भंग की। पलट कर देखा तो देखते ही एक पल के लिए जाँघों के बीच फँसी दूध की अधभरी बाल्टी ज़मीन में औंधते-औंधते बची। डमरू को अपनी आँखों पर यक़ीन नहीं हुआ। होता भी कैसे, जिस फूटे मुँह से सदा ज़हर बुझे शब्द बाणों की बारिश होती हो, उसी से आज मानो मोगरे की पत्तियाँ झर रही हैं। इतना ही नहीं, जो उससे गज़भर का फ़ासला बना कर रखती थी, वही हाथ में महेरी का कटोरा थामे उससे बड़े प्यार से कह रही है, "देवर, महेरी लाई हूँ। ले, पी लीजो!"

डमरू को लगा जैसे किसी ततैए ने उसे डंक मार दिया। इस स्नेहिल सम्बोधन पर उसने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। बस, उसने पहले तो उसे ऊपर से नीचे देखा और फिर, यह कहते हुए अपने हिल्ले सिर लग गया, "धर जा, पी लूँगो।"

"ठीक है, आळा में धरके जा री हूँ।"

इसके बाद दूध से भरी बाल्टी में तेज़ धार की ही आवाज़ सुनाई देती रही। लगता है वह जा चुकी है। उसे जब भरोसा हो गया तब उसने धार रोक कर पहले अपने पिछवाड़े को टोहा, और फिर जितना दूध दोहना था, उसे वहीं बीच में छोड़ खड़ा हो गया। बाल्टी को एक तरफ़ रख, बेहद चौकसी बरतते हुए उसने इधर-उधर देखा। क्या पता किसी भीत-पाखे की ओट में छिपी खड़ी हो। वैसे भी—

काया माया स्त्री, हरा रूख की छाँय ।
ये बदले हैं पल्ल में, ये काए की नाय ।।

बाल्टी को गमछे से ढक, वह आले में रखे महेरी के कटोरे के पास आया और उसे शक भरी निगाह से निहारने लगा। डमरू की समझ में इस असमय बदलाव का भेद नहीं आया। उसने एक बार फिर अपने आसपास बारीक नज़र मारी और खुद से, कटोरे की ओर देखते हुए बोला, 'यार डमरू, ई सिंगारवाली या महेरी में कोई नक्कस-ताबीज तो पढ़वाके ना लाई है... ई बिना मतलब तो काई का चिरा पे भी ना मूते है... फिर आज बड़ी अदा सू महेरी कैसे लेके आई है... और तो और, अन्यायी देवर कहके और बुलारी है... आखिर ई रगड़ा है कहा... ई इतनी भली तो है ना।'

अपने आपसे उलझे डमरू के कुछ पल्ले नहीं पड़ रहा है कि या इलाही यह माज़रा क्या है? उसने कटोरे को छुआ और यही सोचकर उसे उठा लिया कि होगा जो देखा जाएगा। मगर इससे पहले कि वह महेरी में घूँट भरता, कटोरा होंठों के पास आकर ठिठक गया। न जाने क्यों डमरू का मन उसे पीने की गवाही नहीं दे रहा है। हथेली पर रखे कटोरे को वह फिर से टकटकी लगाकर देखने लगा और उसे अपलक निहारते-निहारते उसकी हँसी छूट गयी। बायीं हथेली पर रखे कटोरे को देखते हुए, इस बार डमरू अपने आपसे कहने लगा—

कै तो पक्गी फालतू, कै कग्गा गयो बिटाल ।
कै साँई मेरा दिन फिराँ, कै आगो मेरो काल ।।

इतना कह डमरू एक ही साँस में महेरी से भरे कटोरे को हलक में उतार, यह कहते हुए खाली कटोरा हवा में उछाल दिया, 'ले भई डमरू, अब जो होएगी देखी जाएगी... पट्ठा, या तो तेरा दिन फिरगा या फिर तेरो समझ ले आज काल आगो!'

ख़ाली कटोरा एक हल्के-से चीत्कार के साथ ख़ामोश हो गया। डमरू ने पाँवों में हवाई चप्पलें डालीं और लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ तेज़ी से नोहरे से निकल, बग़ल वाली तंग गली में समा गया।

---

1 . मेवात का एक लोककवि। इन्होंने अपना परिचय देते हुए लिखा है—
दिल्ली सदर जिला गुड़गाँवा, मूलथान में रहता हूँ
फिरोजपुर के बसू परगने, सारा पता बताता हूँ
खत गेरन कू डाक नगीना, मेव जात कहलाता हूँ
हरसुखदास संत मेरा सतगुरु, जिसका सिखाया गाता हूँ।

9

आमना ने पूरा वाकया अपनी जिठानी फ़ातिमा को सुना कर जैसे ही ख़त्म किया, फ़ातिमा ने मुस्करा कर, आँखें तरेरते हुए कहा, “हरामण, तू तो बड़ी छिनाल निकली। मैं तो तोहे निरी नाज को भरत समझे ही।”

“छिनाल बण्नो पड़े है।” आमना ने निस्पृह भाव से जवाब दिया।

“वैसे डमरू ने कुछ कही तो ना?”

“कहतो तो जब, जब मैं नोहरा में रुकती... पर ढेड मोहे ऐसे देखे जारो हो, जैसे भग्के मेरे चिपट जाएगो... मैं तो बहाण डर के मारे आला में महेरी धर के चली आई। ऐसा को कहा भरोसो... और फिर इतनी जल्दी अकीन भी ना करणो चहिए। वैसे तू चिन्ता मत कर, थोड़ी-सो टैम जरूर लगेगो... मैं भी वाहे जमात में भेजके ही दम लूँगी।”

“बस, एक चीज को ध्यान रखियो। तू वासू अपना आपा ए बचा के चलियो... आखिर डमरू भी है तो मरद ही न।” फ़ातिमा ने अपनी दौरानी आमना को सावधान करते हुए सलाह दी।

“रंडी, याही डर के मारे तो मैं नोहरा में जाणा सू बचू हूँ। ऐसा को कहा भरोसो, मौका देखके कद कोठा में खेंच लेए।”

“फिर तो बहाण मत जाए कर नोहरा में इकल्ली। काई दिन कुछ उल्टो-सूधो होगो, तो हम कहीं मुँह दिखान लायक भी ना रहँगा। हरामी चूल्हा में जाए ई हज्ज और भाड़ में जाए ई जमात... काई दिन ऐसो ना होए के ई कळसंडा मौका देखके कहीं तोहे ही हज्ज पे भेज देए... बहाण, जियारत सू बड़ी है आबरू!”

फ़ातिमा ने अपनी दौरानी आमना के सामने ऐसा ख़ौफ़नाक मंज़र पैदा कर दिया, जिसे सुनने भर से आमना के होंठ पपड़ा गये। लगा जैसे आमना के पीछे-पीछे कोई स्याह दैत्य दौड़ा आ रहा है! एक ऐसा दैत्य जिसकी बलिष्ठ भुजाओं की मछलियाँ आमना को दबोचने के लिए व्याकुल हो छटपटा रही हैं। भयातुर आँखें अनिष्टता के सुर्ख़ डोरों से पटती चली गयीं। लगा मानो डमरू ने उसे सचमुच नोहरे के सूने कोठे में खींच लिया है।

“वैसे मेरी एक सलाह है?”

“ऐं!” आमना अकबकाते हुए जैसे सूने कोठे से, डमरू की बलिष्ठ भुजाओं से मुक्त होते हुए बोली।

“रंडी, तेरे भीतर ऐसो कहा घुसगो जो तू पसीना-पसीना हुई जारी है?” आमना को इस तरह डरा और सहमा हुआ देख फ़ातिमा ने पूछा।

“ना बहाण, मैं तो कतई ना जाउँ वा हरामी नोहरा में।” बमुश्किल अपने आप पर क़ाबू पाते हुए आमना बोली।

“याही मारे मैं एक सलाह दे री हूँ!”

“ना, मोहे ना चहिए तेरी कोई सलाह। कदी ऐसो ना होए तेरी ई सलाह मोहे कहीं की ना छोड़े।”

“पहले सुण ले, ऐसे मत बिदके!” फ़ातिमा ने आमना को हल्के से डाँटा।

आमना को लगा शायद उसकी जिठानी ठीक कह रही है। आख़िर इसकी सलाह सुनने में क्या बुराई है। मानना न मानना तो उसका अधिकार है।

“देख, मेरी माने तो नोहरा में तू नसीबन के साथ जाए कर। मेरा हिसाब सू इतनो डमरू ना, जितनो या नसीबन को दिल जीतनो जरूरी है... जाने ई आग लगाई है न, वाके नकेल गेरनी जरूरी है। कोसिस करियो या नसीबन के आगे गंडजली बात ना करके, लल्लो-चप्पो लारा-लप्पा सू काम लीजो... सबसू जरूरी अपनी या जिठाणी का पेट घुसनो है।”

आमना जिस तरह फ़ातिमा के एक शब्द पर सिर हिलाते हुए अपनी सहमति जता रही थी, उससे फ़ातिमा समझ गयी कि उसकी सलाह काफ़ी हद तक आमना की समझ में आ गयी लगती है। इसीलिए वह आमना का हौसला बढ़ाते हुए बोली, “वैसे मैं भी कोसिस करुँगी के काई तरह ई डमरू जमात कू तैयार हो जाए... मेरी बात तो ऊ जरूर मानेगो। डरे मत, मैं हूँ न तेरे साथ। या घर का पाड़-तिवाड़ इतनी आसानी सू ना होण दूँगी, जितनी आसानी सू हमारी ई जिठाणी नसीबन करणो चाहरी है।”

अपनी जिठानी फ़ातिमा के इस संकल्प पर आमना ने राहत की लम्बी साँस ली, कि वह बे-मतलब तिल को ताड़ बनाने पर तुली हुई थी। फ़ातिमा सही कह रही है कि ज़मीन-जायदाद के हिस्से होने इतना आसान नहीं हैं।

“वैसे या मामला में पूरा घर को कैसो माहौल है?” आमना ने आत्मविश्वास बटोरते हुए फ़ातिमा से पूछा।

“माहौल कहा, सबकी यही राय है के कैसे भी या डमरू ए जमात में जाणा कू तैयार करो... एक बर याको जी जमात में रमगो न तो ई खुदी सबकुछ भूल जाएगो।”

“सबकुछ भूल जाएगो, मतलब?” आमना ने हैरान होते हुए पूछा।

“मतलब ई के जमात में जाणा के पीछे याहे कहाँ फुरसत मिलेगी।”

“और अगर ई जमात में ही डोलतो रहेगो, तो बहाण इन ढोरन्ने कौन देखेगो... ई काम भी हम कर लेंगा, पर खेतन्ने कौन सँभालेगो?” आमना की पेशानी पर आने वाली परेशानियों और दुश्चिन्ताओं की लकीरें गहराती चली गयीं।

“देख बहाण, अगर या जमीन-जादाद का और हिस्सा होना सू बचाणा हैं, तो थोड़ी-बहोत कुरबानी तो देनी पड़ेगी ही... थोड़ो-बहोत तो नफा-नुकसान उठानो पड़ेगो।”

आमना चुप। वह मन ही मन अपने हिस्से में आने वाले कामों की फ़ेहरिस्त बनाने लगी।

“चल छोड़, ये पीछे की बात हैं। पहले या डमरू ए जमात में भिजवाणा की जुगत भिड़ाओ।” इतना कह फ़ातिमा काम का बहाना कर आमना से पीछा छुड़ाने की ग़रज से खड़ी हो गयी। आमना की इस अन्तहीन गीबत का तो कोई छोर नहीं है जैसे।

मर्द औरतों के सिरधरे (क़व्वाम) हैं। इसलिए अल्लाह ने एक को दूसरे पर प्रमुखता दी है। तो जो नेक औरतें होती हैं वे अपने शौहरों का आज्ञा पालन करने वाली, और उनकी ग़ैर-मौजूदगी में अल्लाह की तौफ़ीक से उनके हक़ों की हिफ़ाज़त करने वाली होती हैं।

—क़ुरआन, अन-निसा 4:34

मर्द औरतों के सिरधरे (क़व्वाम) हैं। इसलिए अल्लाह ने एक को दूसरे पर प्रमुखता दी है। तो जो नेक औरतें होती हैं वे अपने शौहरों का आज्ञा पालन करने वाली, और उनकी ग़ैर-मौजूदगी में अल्लाह की तौफ़ीक से उनके हक़ों की हिफ़ाज़त करने वाली होती हैं।

जुह्न [1]

ल परलेंडी का असली नाम बहुत से नामों की तरह आज तक गाँव की तो छोड़िए, मुहल्ले में ज़्यादातर को नहीं पता। स्थिति और परिस्थिति के अनुसार यह नाम सबकी ज़ुबान पर इस क़दर चढ़ चुका है कि अब कोई इसके असली नाम को जानने के पचड़े में ही नहीं पड़ता। यही हाल इस जुगलजोड़ी के दूसरे नाम यानी फकीरा उर्फ़ चकलेंडी का है। कुछ देर के लिए अगर थोड़े-से ज्ञानियों को छोड़ दिया जाए, यानी जिनका सामाजिक ज्ञान समृद्ध है और जिन्हें चकलेंडी का मतलब मालूम है, वे तुरन्त समझ जाएँगे कि इस फकीरा की जाति क्या है। हालाँकि इस नाम को सुनकर एक पल के लिए कोई भी यह सोचने पर मजबूर हो जाएगा कि यह हिन्दू है या मुसलमान। इस नाम में हमारी साँझी विरासत, गंगा-जमुनी तहज़ीब और साम्प्रदायिक एकता का ऐसा गाढ़ा रंग मिला हुआ है कि इसकी धार्मिक पहचान करना बेहद मुश्किल है। हाँ, फकीरा के पक्ष में जो बात जाती है वह यह कि भले ही कुछ शरारती तत्त्व उसे उत्तेजित और उकसाने के लिए चकलेंडी शब्द का इस्तेमाल करते हैं लेकिन इसी शब्द में इसकी जातिगत और सामुदायिक पहचान भी छिपी हुई है, जो यह बताती है कि हिन्दू होने के साथ-साथ उसकी जाति क्या है। दरअसल, हमारे समाज में ऐसे अनेक शब्द हैं जो हमारी जातिगत पहचान के सूचक हैं। मसलन किसी के लिए अगर राँपी शब्द का इस्तेमाल किया जाता है, तो कोई भी स्थानीय समाजविज्ञानी तुरन्त उसकी जाति का अनुमान लगा सकता है। चकलेंडी भी फकीरा की जातिगत पहचान का सूचक है—यानी एक कुम्हार, कुलाल, कुमावत, प्रजापति, प्रजापत, कुमार अपने चाक के किनारे खुदे छोटे-से गड्ढे में जिस लकड़ी के कलमनुमा गोल सिरे को डालकर उसे घुमाता है, उसे चकलेंडी कहा जाता है।

लपरलेंडी और चकलेंडी यानी फकीरा तो महज कुछ उदाहरण हैं वरना खिच्चू, पकौंड़ी, टूँगा, बोसा, बंडू, बुच्ची, बोंगा, ऐंडा, बेंडा समेत बरबरी, लपना, लंका, कायरी, भग्गो, गुट्टो जैसे ऐसे उपनामों से हमारी पोथियाँ अटी पड़ी हैं। पता नहीं यह किस समाज विज्ञानी की देन है कि हमारी असली पहचान पर इन उपनामों ने कब्ज़ा किया हुआ है?

अब इसी कलसंडा यानी डमरू को ही लीजिए। भला कलसंडा या डमरू भी कोई नाम हुआ। इसकी जगह शहजाद अली, मुनव्वर हुसैन या इश्हाक अली भी तो हो सकता था। एक मिनट! लो डमरू का नाम लिया और डमरू हाज़िर।

लपरलेंडी ने दूर से उसे अपनी ओर आता देखा, तो वह भाँप गया कि लगता है डमरू के घर में पहले से चल रही टिसल-फिस्स ने और ज़ोर पकड़ लिया है। बावजूद इसके वह डमरू को जानबूझ कर अनदेखा कर गया। डमरू जब उसके चौतरे पर चढ़ गया और मूढ़ी खींचकर बैठ गया, तब लपरलेंडी चौंकने की मुद्रा अपनाते हुए बोला, "अरे डमरू, तू कद आयो?"

"समझ ले, जब तैने देख लियो।" डमरू ने चेहरे पर आते भावों को छिपाने की कोशिश करते हुए जवाब दिया।

"कैसे, सब ठीक तो है?" लपरलेंडी ने डमरू को हल्के से खुरचा।

"हाँ, सब ठीक है।"

"ना भई लाला, मोहे तो कुछ भी ठीक ना लगरो है।"

"यार काका, तोसू एक बात कहणी है।" इतना कह डमरू चुप्पी साध गया।

"चुप कैसे होगो, बोले न!"

"बोलूँ कहा, आज तो कमाल होगो... मेरी जा भावज का फूटा मुँह सू कदी दो मीठा बोल भी ना फूटे हा, वाही का मुँह सू जैसे आज फूल बरस रा हा।"

"साफ-साफ कह, बातन्ने मत चोद!" लपरलेंडी अपने आपको सीधा करते हुए झल्लाया। उसकी व्यग्रता मानो जवाब देने लगी।

डमरू ने इसके बाद सवेरे का पूरा वृत्तान्त लपरलेंडी को सुना दिया।

पूरी बात सुनने के बाद लपरलेंडी ने पहले गरदन हिलाई। फिर एक लम्बा हुंकारा भरा, और इसके बाद बेहद गम्भीर हो डमरू को सुनाते हुए जैसे ख़ुद से बोला— तिरिया और तूमड़ी, सब बिस की सी बेल ।

बैरी मारे दाव सू, तिरिया मारे हँस-खेल ।।

"काका, मोहे भी कुछ ऐसे ही जँचे है वरना सिंगारवाली इतनी भली ना है, जो मोहे महेरी का भर-भर कटोरा पियावे।"

"लाला, कुछ तो गड़बड़ है!" फिर कुछ पल सोचने के बाद डमरू की तरफ़ देखते हुए बोला, "कहीं ऐसो तो ना है के तेरी या हरामण भावज ने या महेरी में कुछ उल्टी-सूधी चीज मिला दी होए, ई सोच के ना रहेगो ई खाली बाँस और ना बजेगी याकी तूमड़ी।"

"अगर कोई ऐसी बात होती, तो ई डमरू तेरे आगे बैठो ना पातो! अब तलक तो याको जनाजो निकल चुको होतो।"

"यार, ई बात भी तेरी सोलह आने ठीक है... फिर यामें कहा राज है जो ई तिरिया या खेल ए खेलरी है।" इतना कह लपरलेंडी ने सिर खुजलाते हुए अपने अनुभवों के घोड़ों की लगाम ढीली छोड़ते हुए पूछा, "वैसे, पिछला एकाध दिनाँ में तिहारे घर में कुछ बात हुई ही?"

“बात कहा हुई, एक दिन इसा की निवाज सू पहले मैंने अपणा भाई ऐसेई छेड़ दिया हा के मैं तो हज्ज करण जाऊँगो।”

“फिर?”

“फिर कहा, मेरो बड़ो भाई जमालू बोलो के हज्ज कोई बातन् होवे है।”

“फिर?” लपरलेंडी थोड़ा आगे की ओर झुकते हुए फुसफुसाया।

“बस, यही बात हुई ही।”

“देख, ऐसे दाई सू पेट मत छुपा। जो असल बात है वाहे बता?” लपरलेंडी डमरू की आँखों में उतरते हुए खीझा।

“ऐसी तो कोई बात ना ही, बस कमालू ने ई जरूर कही ही के हज्ज पे जो दौलत खरच होएगी, ऊ कहान् सू आएगी।”

“फिर तू कहा बोलो?” लपरलेंडी की आँखें चमकने लगीं।

“मैं बोलो के या घर में मेरो कुछ हक ना है? मेरो भी तो जी करे है हज्ज पे जाण कू।”

“यापे तेरा दोनूँ भाई कुछ ना बोला?” एक-एक कर लपरलेंडी के अनुभवों के घोड़े अब पूरी गति से दौड़ने लगे।

“हाँ, नवाब बोलो हो के आज तेरो हज्ज करण कू जी कर्‌रो है... कल पतो ना कुछ और कू करेगो... ऐसो कर पहले तू जमात कू चलो जा। अन्यायी, सारी जियारत-इबादत एक जैसी होवे हैं।”

“फिर पलट के तैने कहा जुआब दियो?” लपरलेंडी की छोटी-छोटी आँखें तेज़ी-से फैलने-सिकुड़ने लगीं।

“मैंने भी कह दी के हमारा या बड़ा भाई हाजी जमालू की जियारत तो डोले जहाजन् में मजा लेती, और डमरू बदना-गूदड़ी ए कन्धा पे लटका के डोले धूल फाँकतो।”

“वा मेरे बब्बर शेर! याहे कहवे हैं असली मरद।” लपरलेंडी हुमकते हुए डमरू की पीठ थपथपाते हुए उसका हौसला बढ़ाते हुए बोला, “और तेरी भावज, वे ना बोली कुछ?”

“बस्स, बड़ी भावज नसीबन बोली ही केऽऽऽ”

“के याहे हज्ज करण भेज देओ।” लपरलेंडी ने अनुमान लगाते हुए डमरू का वाक्य बीच में काटते हुए कहा।

“ना, भावज ने हज्ज की बात ना कही। वाने ई बात मेरे पीछे कही बताई के कहीं सू कोई पारो लाके याका गला में बाँध देओ।”

“डमरू, अन्यायी तेरी तो लाटरी निकलगी!” उचकते हुए लपरलेंडी डमरू की कोच में तर्जनी धँसाते हुए बोला।

"काका, तू तो बावली बात करे है। ऐसा मेरा भाग कहाँ। तैने तो ई बात कर दी के — कहा ओस को मेह, कहा बादल की छाया ।

कहा भूत की जूण, कहा सुपना की माया ।।"

"ऐसी बात ना है डमरू। अन्यायी, मरद की किस्मत और औरत का चलित्तर बदलते टैम ना लगे है। अब देखे न, तेरी वही भावज जो हर बखत कलसंडा कह-कह के तेरी गेंऽऽऽड में लट्ठ दिए राखे ही, वही आज देवर-देवर करती टिटयाँती हुई तेरे आगे-पीछे डोल री है। फिकर मत कर। खुदा ने चाही, तो मेरे यार एक दिन तेरी ई मुराद भी पूरी होके रहेगी।" कहते-कहते लपरलेंडी की पलकें भारी होती चली गयीं।

"खुदा भी अच्छी तरह जाणे है काका के किसकी मुराद पूरी करनी है, और किसकी ना। पिछला जनम का कोई करम हा, जो आज ये दिन देखना पड़रा है... काका, सऽऽब तकदीरन् का खेल हैं।" डमरू ने लम्बा साँस ले उसे बाहर छोड़ा।

"वैसे तैने या जमात का बारा में कहा सोची है?" लपरलेंडी वापस असल मुद्दे पर आते हुए बोला।

"सोची कहा, जो मिलरो है वाही पे सबर करणो पड़ेगो।"

"बुरो ना मानो तो एक बात कहूँ?"

"बुरा मान्ना की होएगी तो मान जाऊँगो... वैसे भी मेरा बुरा मान्ना या ना मान्ना सू काई पे कहा फरक मारे है।" डमरू ने निस्पृह भाव से कहा।

"देख भई डमरू, वैसे तो ई तिहारो घर को मामलो है पर फिर भी मोपे कहे बिना रुको ना जारो है... मेरी एक सलाह है के अगर तेरा भाइन्ने जमात की कही है न, तो तू चुपचाप उनकी बात मान ले।"

"मेरी भी यही सलाह है।" डमरू ने लपरलेंडी की सलाह से सहमत होते हुए कहा।

"अन्यायी, तेरी कौन-सी आस-औलाद है जाकू तोहे दौलत जोड़नी है। अरे, पेट ही तो भरणो है... ई तो कहीं भी भर जाएगो। कम सू कम या बेमतलब की राँडा-निपूति सू पीछो तो छूटेगो।"

"काका, ईमान सू कहूँ मेरो हंस रोवे है जब मेरी भावज मोहे ताना देवे है!" कहते-कहते डमरू की आँखें भर आयीं। हिलकियाँ बँध गयीं, "या... या घर में मेरो इतनो भी हक ना है के..."

"जी भारी मत कर। हिम्मत सू काम ले। बावळा भाई, तैने सही कही ही के सब करमन् का खेल हैं। अब तू मोहे ही देख, तेरी काकी तीन-तीन बाळकन्ने छोड़ के वा तेली का के साथ उडगी। पतो ना वा कीचक में ऐसी कहा बात ही। बता मैंने वाहे कहा सुख ना दियो? अब ये करमन् का खेल ना हैं तो कहा हैं।" लपरलेंडी के भीतर जैसे कुछ टूटने लगा, "पर मैं किसके आगे रोऊँ!"

"काका, तू बुरो मान जाएगो पर सच्ची कहूँ, वा काकी का लक्खण मोहे शुरू सू ही ठीक-सा ना लगरा हा। मैं तो वाका माथा पे तौड़ी देख के समझगो हो के— जाके माथा पे तौड़ी पड़ें, ऐरा-गेरा तौर ।

'कोक' कहे सुण ब्यासजी, तिरिया खसम करेगी और ।"

"तू या बात ए कहा कहरो है, मोहे सब पतो ही। अरे— गज को घूँघट काढ़ के, तिरछा राखे तौर ।

'कोक' कहे सुण ब्यासजी, तिरिया खसम करेगी और ।।

रात-बिरात ऊ कहाँ जावे ही मोहे सब पतो ही, पर हीं तो घर बसाणो हो।"

"ईमान सू कहूँ काका, इन तिरिया चरित्तरन्ने देखके ही मेरो मन घर बसाना कू ना करे है... वैसे भी मेरा जैसा मलूकजादा के पै बीरबाणी कदी ना रुकेगी।"

"मेरे यार, या करम का लेखा काई ने पढ़ा होता, तो हम्भी पढ़ लेता। आए दिन तो तेरी काकी अपणा भुखलंडिया भाईन् के पै पीहर में पहोंची रहवे ही। मैंने खूब समझा ली के— सुनियो तिरिया बावली, पीहर कू मत जाए ।

मिलें चना का टीकड़ा, तू हूँ बोदी हो जाए ।।

पर मेरी मानी होए जब न। अरे, जभी तो काई ज्ञानी ने कही है के— परारब्ध पहले बणी, पीछे बणो सरीर ।

तुलसी अपणा जी की, कौन बँधावे धीर ।।"

"ना भई काका, मैंने तो अब ठान् ली के जमात में मैं जाके रहूँगो।"

"बिल्कुल सही ठानी है। कम सू कम या दुनियादारी सू दूर रहके, खुदा की इबादत में तो लगो रहेगो... पर मैं तो कहीं को भी ना रहो, न दीन को न दुनिया को। मेरी तो हालत ऐसी हो री है के— रँडुआ को कहा माजनो, जमीं बिना कहा लोग ।

पुतर बिना कहा रोसनी, दूध बिना कहा भोग ।।

कहा करूँ, मैं तो या औलाद ए छोड़ के कहीं जा भी ना सकूँ।" अधेड़ लपरलेंडी का पूरा जिस्म अधसूखे दरख़्त-सा लरजने लगा। पता नहीं वह अतीत की किन कन्दराओं में खो गया। उसे तो यह भी पता नहीं चला कि डमरू उसके चौतरे से कब चला गया।

---

1 . जुह्र : दिन ढलने का समय।

2

लपरलेंडी के चौतरे से उतर डमरू अपने नोहरे की ओर न जाकर, बीच वाली मस्जिद की ओर मुड़ गया। हालाँकि मग़रिब की नमाज़ में अभी वक़्त है। मस्जिद में दो-चार लोग तो मिल ही जाएँगे। अगर उनसे पता नहीं चला तो कुछ देर बाद आने वाले नमाज़ियों से पूछ लेगा, और अगर इनसे भी बात नहीं बनी, तो मस्जिद का इमाम तो है ही। इमाम की याद आते ही डमरू की सारी मुश्किलें जैसे दूर हो गयीं।

जहाँ चाह, वहाँ राह यानी डमरू को न तो किसी नमाज़ी से पूछने की ज़रूरत पड़ी, न किसी से दरयाफ़्त करने का मौक़ा आया। इमाम साब अर्थात् हाजी याहिया ख़ुर्रम उसे मस्जिद के बाहर ही मिल गया। अब आप सोच रहे होंगे कि इस इमाम यानी हाजी याहिया ख़ुर्रम का सम्बन्ध मेवात के मेवों के कौन-से गोत्र या पाल से है? ख़ुर्रम तो मेवों के न यदुवंशियों में पाये जाते हैं, न सूरजवंशियों में। आप सही सोच रहे हैं। दरअसल, इमाम साब का सम्बन्ध मेवात से दूर-दूर तलक नहीं है। इसे तो दारूल उलूम से यहाँ इसलिए बुलाया गया है कि बहुतों को ख़ासकर कुछ चंद्रवंशियों और सूरजवंशियों को अभी तक यही लगता है कि वे पूरी तरह मुसलमान नहीं बन पाये हैं। इसलिए अपने आपको सच्चा और असली मुसलमान बनाने की नीयत से वक़्त-बेवक़्त बुलाये गये उलेमाओं में से कुछ यहाँ के स्थायी रहवासी बनकर रह गये। क्योंकि मेवों को असली मुसलमान बनाने से अच्छा दूसरा कोई सबाव इन्हें अब लगता ही नहीं है। ठीक उन बहुत-से सरकारी मुलाज़िमों की तरह, जो पहले तो इस काले पानी में आने से कतराते हैं, मगर बाद में वे यहाँ से जाने का नाम नहीं लेते हैं।

वही इमाम हाजी याहिया ख़ुर्रम डमरू को मस्जिद के बाहर मिल गया।

“इमाम साब, अस्सलामालैकुम!” डमरू ने बड़े अदब और संजीदगी के साथ कहा।

“वालैकुम अस्सलाम... और मियाँ डमरू कैसे हो, अभी तो नमाज़ का वक़्त भी नहीं हुआ है?” इमाम ने मुस्कराते हुए पूछा।

“इमाम साब, मैं कदसू मियाँ होगो! मेरे पीछे ना कोई बाल, ना बच्चा... और आप मोहे मियाँ कहरे हो।”

इमाम हाजी याहिया ख़ुर्रम समझ गया कि डमरू का इशारा किस तरफ़ है।

“मियाँ ऐसा लफ़्ज है जिसे किसी भी मर्द के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। ख़ासकर बड़ों के लिए। जैसे हिन्दुओं को ही लीजिए उनके यहाँ जाहिल से जाहिल आदमी को भी पंडिज्जी कह दिया जाता है... पंडित तो आपको मालूम है न किसे कहते हैं?”

“मालूम क्यों ना है... हमारा गाँओं में कई घर है पंडतन् का... पंडत, बामणन् सू कहवे हैं और किस्सू कहवे हैं।” डमरू ने अपनी कुशाग्रता का इस्तेमाल कर बड़े भोलेपन

से जवाब दिया।

“डमरू मियाँ, पंडित आलिम को कहा जाता है और आलिम की कोई जमात नहीं होती। मगर आज जिसे देखो वही पंडिज्जी बना घूम रहा है।”

“जैसे मैं मियाँ बणो घूमरो हूँ।”

डमरू के इस भोलेपन पर इमाम ज़ोर से हँसा, “मियाँ का मतलब खाली शौहर ही नहीं होता, उसके कई मतलब होते हैं।” कहते-कहते अचानक इमाम को जैसे कुछ याद आया, “ख़ैर छोड़ो, यह बताओ इस वक़्त कैसे आना हुआ?”

“इमाम साब, या गाँओं सू कोई जमात जारी होए तो मोहे भी बताओ!”

“बताना क्या, अगले हफ़्ते जा रही है एक जमात।”

“फिर तो इमाम साब उनमें मेरो नाम भी जुड़वा दीजो।”

“ठीक है।”

डमरू मस्जिद में अन्दर भी नहीं गया। उसका काम बाहर जो हो गया। रास्तेभर वह जैसे हवा से बातें करता रहा। जिस्म एकाएक यह सोच कर रूई के फाहे जैसा हो गया कि चलो रात-दिन खटने से कुछ तो पीछा छूटेगा।

3

पूरा घर हैरान।

सबसे ज़्यादा हैरानी उस नसीबन को हो रही है, जो अपने लाड़ले देवर को जब कभी आईने के सामने खड़ा देखती, तो उसके हाथ अपने परवरदिगार के सामने खड़े हो जाते कि किसी तरह उसके इस देवर का घर बस जाए। यह बात अलग है कि जहाँ पहले नसीबन अपने इस देवर का घर बसने की चिन्ता में डूबी रहती, वहाँ अब इस नयी फ़िक्र में मरी जा रही है कि इस मरे डमरू को आख़िर यह हो क्या गया है? वह तो इसका घर बसाने की सोच रही है, और इसने जैसे फ़कीरी ले ली।

नसीबन ने कई बार डमरू को कुरेदते हुए उसके इस बदलाव की थाह लेनी चाही मगर डमरू ने कभी इसका कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया। नसीबन को इस पर और भी ज़्यादा हैरानी हुई जब डमरू ने एक दिन पहले उसे बेहद दार्शनिक अन्दाज़ में सीधा जवाब न देकर, सिर्फ़ इतना भर कहा, "भावज, कुछ ना धरो है या दुनियादारी में।"

"मैं कुछ समझी ना।" नसीबन की पेशानी पर अचानक उभरे धोरे गहराते चले गये। दिल जैसे बैठने लगा उसका।

"यामें समझणा की कहा बात है—

ना कोई तेरो कुटम-कबीला, मात-पिता न भाई है
ना कोई तेरो बेटा-बेटी, ना संग चले लुगाई है
रोवे पीटे रुदन मचावे, बिछट चलो मेरो घर को
सुमरन कर बन्दा हर को।

और आगे सुण भावज—

पैदा है ना पैद होण कू, सब लेखो है मालक को
अमर नहीं कोई या दुनिया में, अमर नाम है मालक को
मूलधान को 'एवज' गावे, जामें शील सबर को
सुमरन कर बन्दा हर को।"

नसीबन सिहरती चली गयी। एक पल के लिए लगा जैसे उसके भीतर कुछ बिखर रहा है। उसे अपने इस लाड़ले देवर डमरू के ढंग कुछ ठीक नज़र नहीं आ रहे हैं। थोड़ी देर उसे कुछ नहीं सूझा मगर अगले ही पल वह झुँझलाते हुए बोली, "आजकल तू किसके पै बैठे है जो ऐसी बेसहूरी बात कर्‌रो है!" नसीबन का कलेजा जैसे फटने को हुआ। एक अनिष्टता की थाप ने उसे विचलित कर दिया। इसके बाद नसीबन से नोहरे में रुका नहीं गया और अपनी सबसे छोटी दौरानी आमना के पास पहुँच गयी, एकदम तमतमाते हुए।

“ऐ री रंडी, तैने अब कहा कह दी वासू?” नसीबन का पूरा ज़िस्म मारे ग़ुस्से के काँपने लगा।

“मैंने काई सू कहा कह दी, जो तू इतनी ताती हुई जारी है?” आमना ने अपनी जिठानी नसीबन से पूछा।

“देख, कैसी भोळी बणरी है, जैसे तोहे कुछ भी पतो ना है। मैं सब जाणू हूँ के तू कैसी चुप छिनाळ है!” नसीबन का आपा खोने लगा जैसे।

“रिजक की सौं मोहे कुछ भी पतो ना है।” आमना लगभग रिरियाते हुए बोली।

यह तो अच्छा हुआ जो इस समय फ़ातिमा मौजूद है। मगर उसकी भी कुछ समझ में नहीं आया। हाँ, इतना ज़रूर है कि आमना और फ़ातिमा भाँप गयीं कि नसीबन किसके बारे में बात कर रही है। फ़ातिमा ने दख़ल देते हुए पूछा, “ऐसी कहा बात होगी दारी, जो तू या आमना पे बिना टिकट चढ़ी जारी है?”

“फातिमा, समझ तू भी सब रही है। मैं सब जाणू हूँ तिहारो जो ई गुंडगोळ बणरो है... और तेरे पै ई जो साँप की मावँसी बैठी है न, याहे सब पतो है... याही सू पूछ!” नसीबन का सीधा-सीधा इशारा आमना की ओर था।

“ठीक है दारी मैं सब समझरी हूँ पर तू भी तो अपणा फूटा मुँह सू कुछ बता।” फ़ातिमा ने अपनी जिठानी को डाँट दिया।

“बहाण, पतो ना या हरामन् ने वा डमरू सू फिर कहा कह दी... ऊ तो पतो ना कहा अंड-बंड बोलरो है। पतोई ना कुछ-कुछ हिन्दून् की सी बेढंगी बात कर्‌रो है के सुमरन कर बन्दा हर को।”

सुनते ही फ़ातिमा और आमना दोनों सहम गयीं, यह सोच कर कि कहीं यह डमरू हिन्दू तो होने नहीं जा रहा है?

“नसीबन, बहाण मोहे अपणी औलाद की सौं है जो मैंने डमरू सू अलीफ सू बै भी कही होए। हाँ, मैं एक दिन महेरी जरूर लेके गयी ही नोहरा में... अच्छो सुण...” एकाएक आमना को जैसे कुछ याद आ गया, “एक बात बताऊँ, वा दिन मैंने भी वाका मुँह सू कुछ ऐसी ही बात सुणी ही के उठगी पिरीत, नाता-रिस्ता टूटगा... कलजुग आगो। मैंने जब पूछी के देवर किसकी किस्सू पिरीत... उठगी, तो कुछ ना बोलो।” आमना ने डमरू से ‘एवज’ की ‘होली’ की जो चंद पंक्तियाँ सुनी थीं, और उसको जो याद रह गया, वह बता दिया।

इससे पहले कि आमना अपने और फ़ातिमा के बीच डहर वाले खेत पर बनी तरतीब और करार से गर्द पोंछने की ओर हाथ बढ़ाती, फ़ातिमा ने बिना किसी देरी के बीच में ही डोर लपक ली, “याने ई बात बताई तो ही, पर मैंने ही यापे ध्यान ना दियो... पर बहाण, अब तू कहरी है तो ठीक ही कहरी होएगी। एक बात पूछूँ, कहीं ऐसो तो ना है के हमारो देवर बैरागी बण जाए?” फ़ातिमा अपने भीतर उठ रही हिलोरों को शान्त करने की कोशिश करती हुई बोली।

“पतो ना बहाण या निपूता का भाग में कहा लिखो पड़ो है, याहे तो ऊपरवालो ही जाणे!” नसीबन की आवाज़ भीग-सी गयी।

आमना ने चुपके-से अपनी जिठानी फ़ातिमा की ओर देखा और आँखों ही आँखों में कहा कि यही है गरम लोहे पर चोट करने का सही वक़्त। फ़ातिमा ने भी एक पल गँवाना उचित नहीं समझा। आमना की आँखों की भाषा तुरन्त समझ गयी।

“नसीबन, बहाण मेरी तो एक राय है के यासू पहले ई डमरू हिन्दू या कोई बैरागी होए, क्यों न याहे हम जमात में भेज देएँ!”

“तू सही कहरी है फातिमा।” इसके बाद नसीबन गहरी साँस लेते हुए अपनी दोनों दौरानियों को सुनाते हुए जैसे खुद से बोली, “बहाण, मोहे ना लगे या डमरू को घर बसतो हुओ।”

अपनी जिठानी को लगभग सहमत होता देख आमना ने किलकते हुए, मगर बेहद संजीदगी से कहा, “मैंने भी अपणो देवर वा दिन सू छेड़नो बन्द कर दियो, जा दिन हमारी या जिठानी ने मैं सबके आगे धमकाई ही। आखिर है तो ई हमारो देवर।” आमना का एक-एक शब्द मानो ठंडे शीरे में डूबा हुआ था।

मगर उदास नसीबन का सारा ध्यान सिर्फ़ और सिर्फ़ अपनी दौरानी फ़ातिमा की इस सलाह पर टिका हुआ है कि कैसे वह अपने देवर डमरू को जमात के लिए तैयार करे? उस देवर को जिसे उसने देवर से ज़्यादा अपने बेटे की तरह पाला हो? वह कैसे इस बेटे समान देवर से कहे कि वह जमात में चला जाए। अगर वह चला गया और लौट कर कभी इस घर में नहीं आया, तो दुनिया उससे क्या कहेगी। सोचते ही नसीबन के होंठ दाँतों तले भिंचते चले गये। वह धीरे-से उठी और चुपचाप अन्दर चारपाई पर आकर धम्म्-से बैठ गयी।

नसीबन के जाते ही फ़ातिमा और आमना खिखियाते हुए हँस पड़ीं। जिस काँटे को निकालने के लिए वे दोनों तरह-तरह की जुगत भिड़ा रही थीं, वह इतनी आसानी से अपने आप निकल जाएगा—इसकी इन दोनों ने कल्पना भी नहीं की थी।

“आमना, रंडी कुछ दिन कू अब तू अपने आप ए सुधार ले। अपने आप ए ऐसी बणा ले जैसे तोसू भली या गाँओं में कोई हैई ना।” फ़ातिमा ने आमना को सलाह देते हुए कहा।

“और कितनी भली बणाऊँ? रात-दिन या कळसंडा ए देवर कहते-कहते मेरी जुबान ना टूट री... और तू कहरी है के मैं अपने आप ए सुधार लूँ!”

“दारी, तू तो बुरो मानगी। मेरा कहणा को मतलब ई है के या नसीबन को सक सूधो तोपे ही जावे है। ठीक है, फिर ऐसो कर तू या डमरू सू बोलनो-बतलाणो सुरु कर दे!”

फ़ातिमा के इस सुझाव पर आमना सोच में पड़ गयी। इधर भाँप गयी फ़ातिमा कि उसकी दौरानी आमना क्या सोच रही होगी।

“अब कहा हुओ?” फ़ातिमा ने आमना को उसकी सोच की सुरंग से बाहर खींचते हुए पूछा।

“मैं ई सोचरी हूँ बहाण के कहीं तू मोहे मरवा तो ना देएगी! कहीं ऐसो ना होए के मैं वाहे देवर-देवर कहती रहूँ, और ऊ काई दिन दिन-धुप्पराई मैं मेरे चिपट जाए!” आमना ने अपनी सोच का ख़ुलासा करते हुए अपनी चिन्ता प्रकट की।

“निगोडी, मैं कौन-सा तेरा हाथन् सू वाका मुँह में आबे जमजम टपकवारी हूँ जो ऊ तेरे चिपट जाएगो... थोड़ी-सी नरमाई सू ही तो बात करना की कहरी हूँ। और फिर अगर चिपट भी गयो तो यामें कौन-सी बुराई है, है तो आखिर तेरो देवर।” इतना कह फ़ातिमा की हँसी छूट गयी।

आमना एक बार फिर किसी दुविधा में घिरती चली गयी कि वह इससे ज़्यादा अपने आपको आख़िर और कितना बदले? कहीं ऐसा न हो कि इस अदला-बदली के चक्कर में असली आमना ही ख़त्म हो जाए?

4

पूरे घर में किसी को यक़ीन नहीं हो रहा है कि डमरू जमात के लिए तैयार हो जाएगा। वही डमरू जो कहाँ तो हज की ज़िद कर रहा था, और कहाँ चुपचाप जमात के लिए तैयार हो गया। सबसे बड़े भाई जमाल खाँ ने बहुत अन्दाज़े लगा लिए, सारे सोतों को खँगाल मारा, मगर वह इस रहस्य को जानने में नाकामयाब रहा। एक बार उसने सोचा भी कि क्या पता नसीबन ने उसे मना लिया हो। पूछा तो नसीबन ने भी कह दिया कि उसकी तो डमरू से बात तलक नहीं हुई। कमाल खाँ और नवाब से पूछा तो वे भी मुकर गये।

"यार कमालू, ई बात मेरे कुछ गले ना उतर्‌री है... जरूर याके पीछे कोई राग है?" अपने छोटे भाई कमाल खाँ को कुरेदते हुए बोला जमाल खाँ।

"मोहे तो ई सारी बिद्‌या वा लपरलेंडी की पढाई हुई लगरी है!"

"ना, लपरलेंडी इतनो भलो आदमी ना है जो काई की जलती ए बुझाए। अन्यायी, ऊ तो पूरो लंकेसरी है।" कमाल खाँ ने नवाब के अन्दाज़े को नकारते हुए कहा।

"मेरे यार, सबसू बड़ी बात तो ई है के ई ऐसो पेश इमाम बण जाएगो, मोहे तो अकीन है ना।" जमाल खाँ अभी भी किसी बच गये सोते के नज़दीक जाते हुए बोला।

"पर एक बात है, जमात में जाना की बात तो हमने ही कही ही। अब अगर ऊ जारो है तो यामें हैरत की कहा बात है?"

"यही तो हैरत की बात है के ऊ एकाएक तैयार होगो!" जमाल खाँ अपने छोटे भाई कमाल खाँ की बात को जैसे अभी भी मानने को तैयार नहीं है।

"तू भी हद करे है... तोहे काई भी तरह अकीन ना होरो है।" कमाल खाँ अपने बड़े भाई पर झल्ला उठा।

"तो फिर ऐसे करें, वासू मना कर देएँ?" नवाब अपने दोनों बड़े भाइयों को आपस में उलझता देख, एक बेमानी सलाह देते हुए बोला।

"ना, मना करनो ठीक ना रहेगो।"

"तू अपणी ऐसी-तैसी करा... अन्यायी, काई बात पे तो टिको रह... ठीक है, जो तोहे अच्छो लगे वाहे कर, हम तो चला। चल रे नवाब खड़ो हो!" इतना कह तमतमाते हुए कमाल खाँ जाने के लिए खड़ा हो गया।

"इतनो तातो मुल्ला मत बण, आराम सू बैठ... अगर ई या बात ए कहरो है तो कोई न कोई वजह होएगी।" नवाब ने अपने बड़े भाई कमाल खाँ को शान्त करते हुए कहा।

"यार, ई असली बात ए क्यों न बतारो है... बेमतलब बात ए रबड़-सी क्यों बढ़ा रो है?"

जमाल खाँ एकदम ख़ामोश हो गया। उसे जँच गया कि अपनी दुविधा अपने दोनों छोटे भाइयों को बताये बिना काम नहीं चलेगा। हारकर उसे कहना ही पड़ा, “मेरी असल चिन्ता या बदनामी सू बचना की है जो पूरा गाँओं में उडी पड़ी है के डमरू ए हम जानबूझ के हज्ज पे ना भेजरा हैं।”

“हाँ, ना भेजरा हैं, तो?” नवाब एकाएक हत्थे से उखड़ गया जैसे, “मेरे यार, गाँओं तो कल ई भी कहेगो के डमरू का घर ए हम ना बसारा हैं।”

“तू कहा समझरो है दुनिया या बात ए कह ना री है।” जमाल खाँ बेहद शान्त भाव से बोला।

“तो फिर करवा दे डमरू को निकाह!”

नवाब के इस आवाह्न पर जमाल खाँ चुप हो गया।

“तो फिर तू बताए न पूरा गाँओं में जो बदनामी होरी है, वासू कैसे पिंड छूटे?” कमाल खाँ ने बात नवाब पर डाल दी।

“मेरी तो एक सलाह है... थोड़ा ठंडा दिमाग सू सोच के देखियो...”

“देख, हज्ज पे जाणा की बात तो करियो मत।” अपने सबसे बड़े भाई जमाल खाँ को बीच में टोकते हुए बोला नवाब।

“यार, पहले याकी पूरी बात तो सुन ले!” कमाल खाँ नवाब को लगभग डाँटते हुए जमाल खाँ की ओर पलटा, “हाँ, पहले तू अपनी बात पूरी कर!”

“मेरी भी वही सलाह है जो तिहारी भावज की है के कहीं सू कोई बुरी-बावली पारो लाके याका गला में ला बाँधो।”

“कहाऽऽऽ!” कमाल खाँ और नवाब दोनों के मुँह से एकसाथ निकला। एक झटके के साथ खड़े हो गये दोनों।

“अन्यायी, ई कहा सोची तैने? जा बात पे या घर में महाभारत मचणा को डर है, तू भी वही बात ले बैठो!” कमाल खाँ की आवाज़ बैठने लगी जैसे।

“तोहे या रामाण ए बाँचना सू पहले कुछ तो सोचणी ही।” नवाब भी कमाल खाँ के समर्थन में उतर आया।

“तो फिर तुम दोनूँ बताओ आखिर या जंजाल सू कैसे पीछा छूटे?” जमाल खाँ ने पस्त होते हुए गुहार लगाई।

“पर तेरा या जंजाल को डमरू की जमात सू कहा मतलब है?” नवाब ने हैरानी के साथ पूछा।

“मतलब क्यों ना है। अगर ई जमात में चलोगो तो पूरो गाँओं ई कहेगो के घर बसाणा की जगह डमरू जमात में भेज दियो।”

“पर या बात ए तो दुनिया जब्भी कहेगी जब हम याहे हज्ज पे भेजँगा?” कमाल खाँ ने सवाल दागते हुए पूछा।

“बावळा भाई, ऊ हज्ज है। वामें रकम खरच होवे है। अरे, जमात कू कहा चहिए—एकाध जोड़ी लत्ता, एक गूदड़ी और एक बदना।”

अपने बड़े भाई का यह समाजशास्त्र दोनों भाइयों के बिलकुल भी पल्ले नहीं पड़ा। सब आपस में गड्डमड्ड हो गया। उनकी समझ में नहीं आ रहा है कि आख़िर उनका बड़ा भाई जमाल खाँ चाहता क्या है—डमरू को जमात में भेजना, उसे हज पर भेजना या फिर कोई बुरी-बावली पारो-सारो लाकर उसका घर बसाना। तीनों भाइयों के बीच सन्नाटा दबे पाँव आकर कब बैठ गया, उन्हें पता ही नहीं चला। आख़िर नवाब ने सारी मर्यादाओं, शिष्टताओं और शालीनताओं की दीवारों को डहा अपना एकतरफ़ा फ़ैसला सुनाते हुए, इस समस्या का पटाक्षेप कर दिया, “ऐसो है अगर डमरू जमात कू तैयार होगो है, तो याहे मत रोको। बाकी पीछे देखँगा। अन्यायी, अगर हाल-फिलहाल हजार-पाँच सौ में पीछो छूटरो है, तो यामें कहा बुराई है... महीना-बीस दिन घर सू बाहर रहेगो, तो जी अपणे आप ठिकाने आ जाएगो... और फिर वैसे भी अभी कौन-सा मुल्ला मरगा या रोजा घटगा। पूरी जिन्दगी पड़ी है। हज्ज को कहा, वाहे तो माणस जब चाहे कर ले।”

“नवाब सही कहरो है।” कमाल खाँ ने अपने छोटे भाई का समर्थन करते हुए कहा।

“ठीक है, जैसी तिहारी मरजी।” जमाल खाँ भी अन्ततः उनसे सहमत हो गया और जाने के लिए खड़ा हो गया।

इधर जमाल खाँ गया, उधर वे दोनों भी अपने-अपने काम के लिए अपनी-अपनी दिशाओं में बढ़ गये।

अपने देवर डमरू यानी कलसंडा के जमात में जाने का दिन तय होते ही आमना ही नहीं पूरे घर ने जैसे राहत की साँस ली। आमना ने तो जैसे ही यह ख़ुश-ख़बरी सुनी, बिना एक क्षण गँवाए सीधी अपनी जिठानी फ़ातिमा के पास जा पहुँची और किलकते हुए बोली, “अब तो राजी है?”

“यामें राजी की कौन-सी बात है?” फ़ातिमा ने उदासीनता के साथ उलटा आमना से पूछा।

“ले, बहाण तैने धरती फाड़ दी... कितनी मुसकल सू तो ऊ मैंने जमात कू राजी करो है और तू कहरी है के यामें राजी की कहा बात है... हीं तो देवर कहते-कहते और वाकी लल्लो-चप्पो करते-करते हालत खराब होगी और तू...”

“तो कहा डमरू तैने ही राजी करो है, मैंने कुछ भी ना करो?”

“मैं कद कहरी हूँ के तैने कुछ ना करो होएगो, पर सबसू जादा तो आबरू पे मेरी ही बणरी ही... देर-सबेर, इकल्ली-दुकल्ली तो नोहरा में मैं ही जावे ही।”

“ऐ इकल्ली-दुकल्ली?” फ़ातिमा की आँखों में शरारत तैरने लगी।